दशरथनन्दन

जगदीशचन्द्र माथुर

मूर्धन्य नाटककार श्री जगदीशचन्द्र माथुर का यह नाटक 'दशरथनन्दन' उन असंख्य लोगों, विशेष रूप से युवजनों, के लिए लिखा गया है जो गोस्वामी तुलसीदास का नाम जानते हैं, उनकी महत्ता का अभिनन्दन भी करते हैं, और प्रायः रामकथा की रूपरेखा से भी परिचित हैं; लेकिन जिनके लिए 'रामचरितमानस' की भाषा तो अनजानी है ही—उसका परिवेश भी पराया है और जिनकी शिक्षा और अध्ययन में तुलसी के कृतित्व के लिए गुंजाइश दिन-ब-दिन कम होती जा रही है।

दरअसल, इस नाटक को लिखने का प्रमुख उद्देश्य ही यह रहा है कि तुलसी के 'रामचरितमानस' की मुख्य कथा और उसके चुने हुए शब्द, पद, विचार और दर्शन आधुनिक समाज तक सहज और मनोहारी ढंग से पहुँच सकें।

और कहना न होगा कि 'दशरथनन्दन' न केवल अपने इस उद्देश्य में सफल एक रंग-नाटक है बल्कि मानस-चतुश्शती के अवसर पर हिन्दी के नाट्य-साहित्य की एक अनुपम उपलब्धि भी है!

मूल्य ८.००
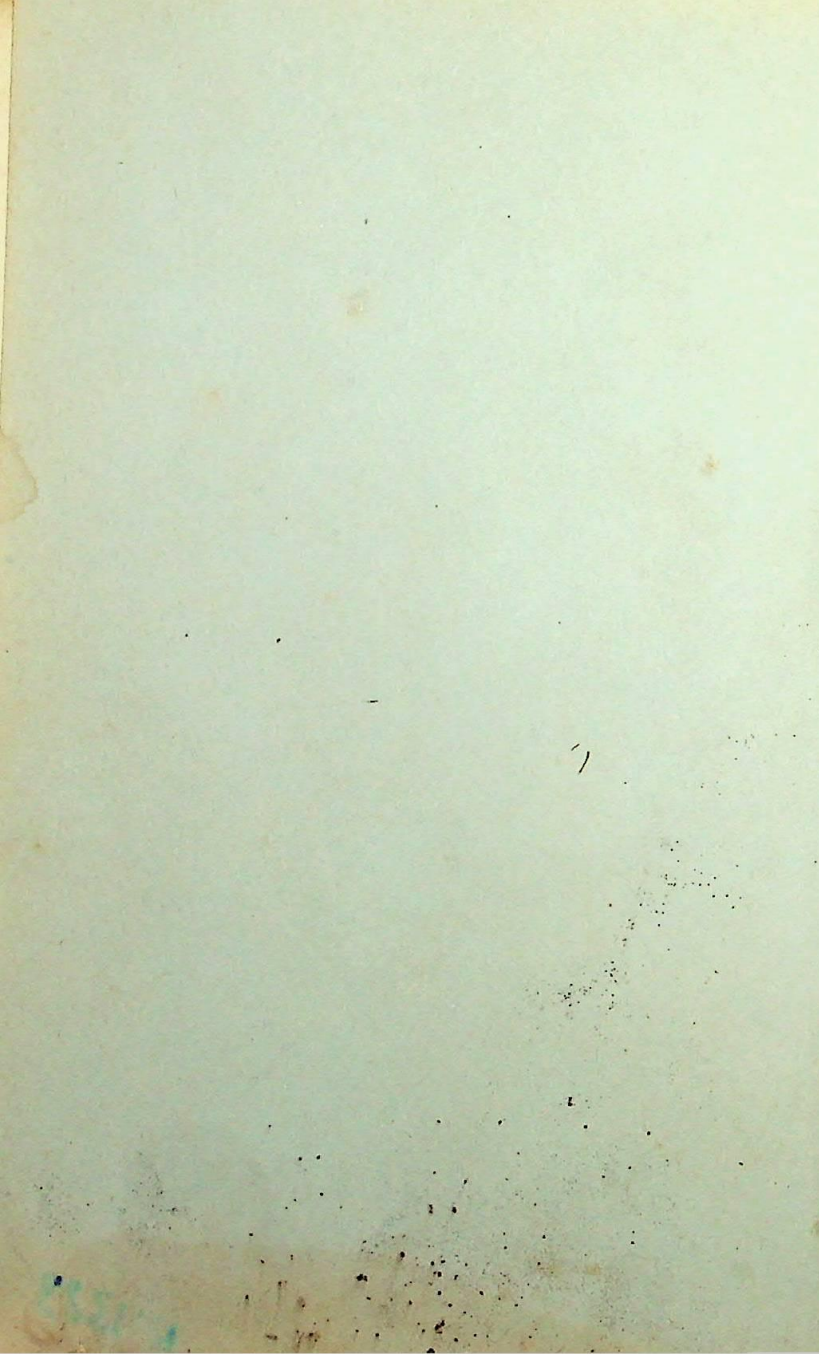
दशरथनन्दन

रंगनाटक

दशरथनन्दन

जगदीशचन्द्र माथुर

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, दिल्ली-११०००६
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण १९७४

मूल्य : ८.००

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस
मौजपुर, शाहदरा, दिल्ली-११००५३
द्वारा मुद्रित

DASHARATHNANDAN
(Play)
Jagdishchandra Mathur

निवेदन

इस नाटक को लिखते समय मेरा प्रधान उद्देश्य यह रहा है कि मैं गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की मुख्य कथा एवं उसके चुने हुए शब्दों, पदों, विचारों और दर्शन को वर्तमान समाज तक इस रूप में पहुँचा सकूँ कि मानस को आसानी से समझा जा सके और साथ ही मूल काव्य के रस एवं भक्ति-तत्त्व का भी आनन्द उठाया जा सके। उत्तर भारत के ग्रामीण समाज के उन प्रौढ़ों और वयोवृद्ध व्यक्तियों के लिए यह नाटक गैर-जरूरी है मानस की बानी जिनके दैनिक जीवन को सुवासित करती है, उनके सामान्य वार्तालाप को सहज ही अलंकृत करती रहती है। नगरों में भी श्रीराम के निष्ठावान् भक्तों, तुलसी की बानी का नियमित श्रवण और उनके मानस का बार-बार पाठ करनेवालों को इसकी आवश्यकता नहीं है। जिन साहित्यिक विद्वानों और मनीषियों ने तुलसीदास की काव्य-प्रतिभा, उसके गुण-दोष विवेचन और भारतीय साहित्य में उसके गौरवपूर्ण स्थान पर लिखा-पढ़ा है, उनके पाण्डित्य-पूर्ण अनुशीलन को भी यह नाटक आकृष्ट नहीं करेगा। बल्कि उनसे तो अपनी धृष्टता के लिए मैं पहले ही क्षमा-याचना करता हूँ।

यह नाटक तो उन असंख्य नगरवासियों तथा नयी पीढ़ी के युवजनों, कॉलेजों और विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के लिए लिखा गया है जो तुलसीदास का नाम तो जानते हैं, उनकी महत्ता का अभिनन्दन करते हैं, रामकथा की रूपरेखा से भी परिचित हैं; परन्तु जिनके लिए राम-

चरितमानस की भाषा अनजानी है और जिनकी शिक्षा और अध्ययन में तुलसीदास के कृतित्व के लिए गुंजाइश कम होती जा रही है।

ऐसे लोगों को मानस के सौन्दर्य और सन्देश से परिचित कराने के लिए आधुनिक हिन्दी-खड़ी-बोली में मानसकथा कई बार लिखी जा चुकी है। लेकिन इन कथाओं को पढ़ने पर पाठक मूल रामचरितमानस से नाता नहीं जोड़ पाता। मानस के प्रसंगों की मार्मिकता और उनके शब्दों और काव्य-सौन्दर्य की हृदयग्राहिता से पाठक वंचित रह जाता है। दूसरा—सर्व-विदित—तरीका रहा है मानस के चुने हुए अंशों को उपलब्ध करना। प्रायः पाठ्यक्रमों में यही व्यवस्था होती है। नयी पीढ़ी के छात्र-छात्राओं का रामचरितमानस से इतना-भर ही परिचय हो पाता है। लेकिन पाठ्यपुस्तकों और सामान्य पाठकों के लिए संग्रहों में खड़ी बोली में अन्य इतनी सारी विविध सामग्री होती है कि अवधी-बैसवाड़ी की आंचलिकता के फलस्वरूप छात्र-छात्राएँ और सामान्य पाठकवृन्द नाम-मात्र के लिए ही मानस के उन अंशों को स्वीकार करते हैं। ऐसे ही जैसे पुरी के तट पर कुछ यात्री बिना नहाये केवल सागर की लहरों का स्पर्श कर पुण्य-लाभ कर लेते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि पुरानी हिन्दी के भार को कब तक ढोया जायेगा। जिन्हें मानस-जैसे गौरवग्रंथों का अध्ययन करना हो वे बशौक उनका अवगाहन करें। अन्य लोगों पर इन्हें लादने की क्या जरूरत है?

किन्तु इसका दूसरा पहलू भी है। 'रामचरितमानस' वह कड़ी है जो नगरवासियों, पढ़े-लिखे लोगों, बुद्धिजीवियों, उच्चवर्गीय समाज को ग्रामों की बहुसंख्यक जनता से जोड़ती रही है। दोनों खण्डों को एक व्यापक परम्परा के मिले-जुले वातावरण का आभास देती रही है। क्या इस कड़ी को सर्वदा के लिए टूटने दिया जाय?

यह मान लेने पर कि कड़ी को टूटने न दिया जाय—सवाल यह उठता है कि मूल मानस की इन वर्गों तक पहुँच कराने का उपयुक्त माध्यम क्या हो? इस सवाल का एक ही उत्तर नहीं है। अनेक तरीके अपनाये जा सकते हैं। मानस-चतुश्शती के सिलसिले में कुछ प्रयोग किये जा रहे हैं।

मेरा निजी अनुभव है कि यदि रंगमंच पर मानस-जैसे गौरवग्रंथ प्रस्तुत किये जायें तो उनका काव्य-सौन्दर्य, कथा और बुनियादी सन्देश सामान्य दर्शक अधिक आसानी से हृदयंगम कर सकता है। इसके मनो-वैज्ञानिक कारण हैं। रंगमंच का दृश्यश्रव्य प्रदर्शन प्रेक्षक की समस्त ग्रहणशील इन्द्रियों को एक साथ ही सजग कर देता है। स्नायविक-मण्डल सचेत हो जाता है। वह प्रेक्षक ही नहीं रहता : जो रहा है उसमें उसे स्वयं हिस्सा लेने का-सा आभास होता है। ऐसी हालत में निरायास ही बहुत-सी बातें उसके मन में ठहर जाती हैं। कथा-प्रसंग और चरित्र-शील ही नहीं, शब्दों और वाक्यों को सजीव और इसलिए स्मरणीय करने का अपूर्व साधन है रंगमंच।

प्रारम्भ में रामलीलाओं का यही उद्देश्य रहा होगा। किन्तु कालान्तर में ऐसा प्रतीत होता है कि पात्रों के बीच संवाद मानस के मूल शब्दों में न होकर केवल खड़ी बोली में रूपान्तरित करके लिया जाने लगा। मूल का पाठ भी वाचक करते हैं। उनमें एक वाचक गद्य कहता और पात्र उसे दोहराते हैं। पिछले दिनों माइक्रोफोन आने के बाद यह प्रवृत्ति भी देखी गयी है कि पात्र बोलने का अभिनय-मात्र करते हैं। कुछ 'बैकग्राउण्ड वायस' रेडियो की भाँति एक माइक्रोफोन के चारों ओर बैठे सभी पात्रों की ओर से बोलती हैं। उनकी स्क्रिप्ट तुलसी के मानस के शब्दों में नहीं होती। प्रायः आधुनिक ही होती है। दिल्ली की पारम्परिक रामलीलाओं में अब यह होने लगा है।

काशी (रामनगर) की रामलीला में परम्पराओं का सावधानी से पालन होता है। रामनगर की रामलीला के कुछ पहलू तो बिल्कुल निराले हैं। अन्य किसी भी देश में इस ढंग का नाटक शायद ही होता हो जिसमें प्रेक्षक-समूह एक ही सान्ध्य-प्रदर्शन में विभिन्न दृश्यों को देखने के लिए एक मंच से दूसरे मंच को जाता हो। मानस का पाठ करनेवाली मण्डली पुरानी पाण्डुलिपि से बात करती है मशाल की ज्योति में। किन्तु जब मैंने लीला का 'टेस्ट' देखा (श्रीमती अवस्थी जिसका मनोयोग से अध्ययन कर रही हैं) तो मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसमें तुलसीदास के मानस के अलावा केशवदास की 'रामचन्द्रिका'

तथा अन्य कवियों की रचनाओं के अंश भी शामिल हैं। निस्सन्देह 'रामचन्द्रिका' के कई संवाद रंगनाट्य के लिए मानस के संवादों की अपेक्षा अधिक गतिपूर्ण और प्रभावशाली जान पड़ते हैं।

जो भी हो, यह मानना होगा कि वर्तमान काल में पारम्परिक रामलीलाओं के प्रदर्शनात्मक अंगों को अधिक प्रतिष्ठा मिल रही है। रावण का पुतला किस रामलीला में सबसे ऊँचा है और कौन वी० आई० पी० उसे अग्नि से प्रज्वलित करता है—इस बात की फिक्र दिल्ली की रामलीलाओं के व्यवस्थापकों को ज्यादा होने लगी है। आगरे की रामलीला में रामचन्द्र की बारात-यात्रा की विशेष शोहरत है। लेकिन इस शोर-शराबे में तुलसीदास की अपनी वाणी अनसुनी रह जाती है। प्रदर्शनात्मक यानी स्पैक्टेकुलर पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है।

अनेक नगरों में रात के समय स्टेज पर संवादयुक्त रामलीलाएँ भी होती हैं। इन रामलीला नाटकों के द्वारा रामकथा के सभी प्रसंग आधुनिक भाषा में प्रस्तुत किये जाते हैं। जहाँ तक मुझे मालूम है, इनकी प्रदर्शनी-शैली पारसी थियेटर के नाटकों पर आधारित है। गद्य और पद्य दोनों का संवादों में उपयोग होता है और कथा-प्रसंगों के ये प्रमुख माध्यम रहे हैं और 'मॉसमीडिया' के युग में भी उनके कार्य में कमी नहीं आयी है। यह समाज के लिए श्रेयस्कर है। किन्तु आजकल कथा सुनने के लिए नयी पीढ़ी के पढ़े-लिखे युवक-युवतियाँ बहुत कम जाते हैं। फैशनयाफ्ता श्रोताओं और अधेड़ उम्र की महिलाओं की संख्या अधिक होती है। यह आश्चर्य की बात नहीं है।

इन सब परिस्थितियों को देखते हुए मेरे मन में उस विचार का पुनरोदय हुआ जिसका बीज आज से ३५-४० वर्ष पूर्व पड़ गया था। छात्रावस्था में मैंने रामचरितमानस के गहन अध्येता स्वर्गीय राजबहादुर लमगोड़ा का एक भाषण सुना, जिसमें उन्होंने बताया कि ध्यान से पढ़ने पर 'अयोध्याकांड' में किसी उत्कृष्ट यूनानी ट्रैजेडी के तत्त्व दीख पड़ेंगे। नाटक का शौकीन मैं था ही। यह विचार मुझे इतना रुचा कि १९३८ में मैंने 'रामचरितमानस' के नाटकीयतत्त्व पर अँग्रेजी में एक लेख

लिखा जो विजयादशमी के अवसर पर इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध पत्र 'लीडर' में छपा। तब से बराबर यह कामना मन में रही कि मानस की भाषा का बहुतांश में उपयोग करते हुए नाटक लिखा जाय। (बहुतांश इसलिए कि खड़ी बोली गद्यांशों के सूत के बिना तुलसी की मणियों की माला उस समाज—पढ़े-लिखे नागरिकों तथा छात्र-छात्रों—के हाथों में ठहर नहीं सकेगी, जिसे आकृष्ट करना मेरा उद्देश्य है।) 'दशरथनन्दन-तुलसी रामलीला' उसी दिशा में एक लघु प्रयास है।

दो और बातें स्पष्ट करना जरूरी है। नाटककार की दृष्टि प्रायः मानस के उन अंशों पर जाती है। जहाँ कथा-प्रसंग रोचक और विस्मयकारी हैं और काव्यगुण हृदयग्राही है। लेकिन आधुनिक नाटककार की दुविधा यह है कि गोस्वामी तुलसीदास का अनुपम शिल्प, उनका अजस्र काव्य-प्रवाह, मानस स्वभाव की गहराइयों का निरायास उद्‌घाटन करने की उनकी क्षमता—इन सब की प्रेरणा न तो यशोलिप्सा थी, न जीविकाभरण, न अपने किसी संपोषक राजा का मनोरंजन। उन्होंने बालकाण्ड में स्पष्ट कहा है कि "निजसन्देह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भवसरिता तरनी। बुध बिश्राम सकल जनरंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि।" कौन-सा वह सन्देह, वह भ्रम, वह मोह जो तुलसीदास के मन में व्यापा और जिसके निवारणार्थ उन्होंने यह कथा रची? कथा का प्रारम्भ ही उन्होंने प्रश्न से किया है जो भरद्वाज मुनि ने याज्ञवल्क्य मुनि से पूछा : "रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही। एक राम अवधेष कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा। नारि बिरहँ दुख लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा।" और दूसरे राम वे हैं जिनके नाम का अमित प्रभाव है और "संत पुरान उपनिषद गावा। संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी।" यही सन्देह सती के मन में उपजा : "बिष्नु जो सुरहित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी। खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी।" लंका के युद्धक्षेत्र में रावण के मायापाश में राम को बँधा देख गरुड़ के मन में भी यही सन्देह हुआ—"मोहि भयउ अति-मोह प्रभुबन्धन रन महुँ निरखि। चिदानन्द संदोह राम बिकल कारन

कवन।" (उत्तरकाण्ड ६८)

इस सन्देह के निवारणार्थ कथा लिखते समय तुलसीदास ने अपने को राम के हाथों सौंप दिया। तुलसीदास का हृदय बन गया रंगस्थली, राम बने सूत्रधार, सरस्वती नर्तकी। बड़ी सुन्दर कल्पना है बालकाण्ड में—"सारद दारु नारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अन्तरजामी। जेहि पर कृपा करहिं जनुजानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी। प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बसउँ बिसद तासु गुन गाथा।" परिणाम ! कोई भी नाटकीय प्रसंग मानस में से उठाता हूँ। कोई भी 'ह्यूमन-इण्टरेस्ट' का व्यवहार राम में दीखता है, झट से तुलसीदास की आवाज सुनाई पड़ती है। उसी मूल शंका के प्रतिध्वनि स्वरूप। राम गुरु के पास पढ़ने जाते हैं और तुलसीदास बोल उठते हैं—"जाकी सहज स्वास श्रुतिभारी। सों हरि पढ़ यह कौतुक भारी।" राम लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र अयोध्या से बाहर निकलते हैं और तुलसीदास याद दिलाते हैं—"कृपा सिंधु मति धीर अखिल बिस्व कारनकरन।" राम और लक्ष्मण धनुषयज्ञ से एक दिन पहले यज्ञ की सजावट देखकर अपना अचरज प्रकट करते हैं कि तुलसीदास को याद आती है—"लवनिमेष महुँ भुवन निकाया। रचइ आसु अनुसासन माया। भगति हेतु सोइ दीन दयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला।"

—और मुझे लगता है, किस झंझट में आ पड़ा मैं ! अनास्था की देहरी पर मँडरानेवाले युग का प्राणी मैं, जो अस्वीकारता और भर्त्सना के युग की पीढ़ी के सामने मानस पर आधारित नाटक प्रस्तुत करना चाहता हूँ—किस तरह तुलसीदास की यों बार-बार टोकनेवाली वाणी को नाटकीय ढाँचे में शामिल करूँ ? इस दुविधा का समाधान हुआ। उस अनुसंधान से जिसमें कतिपय वर्षों से डॉ० दशरथ ओझा और मैं लगे रहे हैं। असम, मिथिला और नेपाल के जिन मध्ययुगीन नाटकों का संग्रह और अध्ययन हम लोग करते रहे हैं उनमें असम के महापुरुष शंकर देव और उनके शिष्यों द्वारा रचित नाटकों में बार-बार दर्शकों के सम्मुख आकर सूत्रधार उन्हें याद दिलाता है। लेकिन श्रीकृष्ण की लीलाओं को आप देख रहे हैं, वे और कोई नहीं परब्रह्म चिदानन्द

परमेश्वर ही हैं। शंकरदेव और उनके शिष्यों के अंकिया नाटकों का उद्देश्य ही यह था कि नाटकों के माध्यम से वैष्णव सम्प्रदाय का मूल-तत्त्व यानी भक्तों के हित में भगवान् का मानवीय रूप में लीला-प्रदर्शन उद्भासित हो सके। यही पद्धति रामलीला में पनपी; वहाँ सूत्रधार का स्थान समाजी द्वारा गाये जानेवाले पदों ने ले लिया। गोस्वामी तुलसी-दास का भी उद्देश्य यही था।

इसलिए इस नाटक में गोस्वामीजी के इस उद्देश्य को निभाने की चेष्टा की गयी है, आधुनिकता के नाम पर उससे कतराने की नहीं। अत्याधुनिक प्रवृत्ति के पाठकों और दर्शकों से मैं इतना ही कहूँगा कि वे समझ लें कि वे म्युनिख नगर के पास ओवरउण्डरगाम नामक ग्राम के विश्वविख्यात मंच पर ईसामसीह सम्बन्धी उस 'धार्मिक नाटक'—पैशन प्ले—को देख रहे हैं जो दस वर्ष में एक बार होता है और जिसके टिकटों के लिए दुनिया-भर के आधुनिक धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति तरसते हैं!

धर्म कहिए, अध्यात्म कहिए, भगवत्‌भक्ति कहिए, तुलसी-साहित्य, तुलसी का शिल्प, उनकी कला, उनके बिना सारहीन होगी। इसलिए इस नाटक में बिना हिचक उसकी घोषणा की गयी है।

अन्तिम बात! क्या सूत्रधार (जिसके स्थान पर तुलसी और उनके वृन्द को मैंने बिठाया है) रेडियो की देन है? क्या मजबूरन मैंने सूत्रधार की इतनी प्रधान भूमिका रखी है? वस्तुत: रेडियो के सूत्रधार या वाचक से सदियों पहले असम के अंकिया नाट, ब्रज की रासलीला और रामनगर (काशी) की रामलीला में सूत्रधार यों बार-बार सामने आकर कथा के सूत्र को सँभालता रहा है। मैंने उसी परम्परा को आगे बढ़ाने की चेष्टा की है। झाँकियों की कल्पना भी नितान्त मेरा अन्वेषण नहीं है। केरल के कूडियाट्टम के उन प्रदर्शनों में, जो मन्दिरों के कथाम्बलम में होते हैं, कुछ दृश्य असाधारण होने के कारण मुख्य दृश्य से अलग प्रदर्शित होते हैं—सूत्र रूप में। पात्रों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसी मंच पर जाना, जैसे विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण की यात्रा या राम-लक्ष्मण का जनकपुरी में घूमना—यह भी परम्पराशील रंगमंच

की एक सामान्य रूढ़ि है।

मैं नहीं जानता कि इस रचना की ओर विद्वज्जन निगाह भी डालेंगे या नहीं। लेकिन यदि दशहरे के दिनों में रात्रि के समय पारसी थियेटर की शैली में, रामलीला प्रस्तुत करनेवाली मण्डलियाँ गोस्वामीजी के शब्दों को सामान्य जनता तक पहुँचाने के विचार से इसे अपना लें तो मुझे सन्तोष होगा। यदि कॉलेजों और स्कूलों में हिन्दी विभाग रामचरितमानस से छात्र-छात्राओं का परिचय कराने के लिए सादे ढंग से ही प्रदर्शन करायें या कक्षाओं में ही अलग-अलग छात्रों में 'पार्ट' बाँटकर इनका पाठ (ग्रुपरीडिंग) करायें तो मानस-चतुश्शती के वर्ष में मेरी दृष्टि में यह अत्यन्त व्यावहारिक मानस-अभिनंदन होगा।—और यदि तुलसीभक्तों और रामभक्तों को यह कागज की नाव रुचे, तो मेरा अहोभाग्य !

—*जगदीशचन्द्र माथुर*

बैंगकॉक
१६ फरवरी १६७४

इस नाटक को खेलनेवालों से

मंचनिर्देशनों की बहुलता से आप घबराइए नहीं, समझ लीजिए कि आप मेरा लिखा नाटक नहीं खेल रहे। आप तो तुलसीदास के रामचरितमानस को मंच पर प्रस्तुत कर रहे हैं।

इसलिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आपका हर पात्र वाक्यों, चौपाई, दोहों इत्यादि का इतना स्पष्ट उच्चारण करे कि प्रत्येक शब्द समझ में आ जाय। गोस्वामी जी के शब्द उभर सकें यही लेखक का उद्देश्य रहा है और यही आपका भी उद्देश्य होना चाहिए।

जिन चौपाई दोहे इत्यादि के अंग गद्य के साथ जुड़े हैं—मणिप्रवाल की माला की तरह हैं उनमें पद्य का उच्चारण भी गद्य ही की भाँति हो,—परिस्थिति-विशेष के अनुसार भाव प्रकट करनेवाले आरोह-अवरोह के साथ। किंतु जिन समूचे दोहों चौपाइयों इत्यादि की अपनी सत्ता है और जो भाव-विशेष को उभारने के लिए रखे गये हैं उनको कविता की भाँति किंतु स्पष्ट बोलना चाहिए। मानस-पाठ की अनेक शैलियाँ हैं। मेरी राय है कि एक ही शैली में पूरे नाटक का पाठ करने से समरसता आ जायेगी और सम्भव है दर्शक ऊब जाय। इसलिए विभिन्न शैलियों में पाठ करने का अभ्यास खासतौर से वृंदवाचक करें। कोई मुश्किल नहीं है।

मंच का स्केच मैंने दिया है। यह केरल, रासलीला, रामलीला, असम के अंकिया नाट और थाईलैंड में रामकियन (रामकीर्ति) नाटक के मंचों को ध्यान में रखकर सुझाया गया है। लेकिन मैं जानता हूँ कि सभी खेलनेवालों के लिए इतने विशाल और विविध स्तरोंवाले मंच को तैयार करना संभव न हो सकेगा। इसी भाँति लाइट—आलोक—का जो विधान मैंने रखा है उसकी व्यवस्था सब जगह नहीं हो सकती।

कोई चिंता नहीं! आप बस नाटक के टेक्स्ट को अच्छी तरह याद करायें, शब्दों के स्पष्ट उच्चारण पर जोर दें, स्वरसंधान में नाटकीयता और स्वाभाविकता दोनों का समावेश करायें। हो सके तो पोशाक उचित और आकर्षक रखें—इतना ही हो जाय बहुत है। और न हो तो समूह-पाठ (ग्रुपरीडिंग) ही कराइए। जैसे भी हो, रामचरित-मानस की वाणी फैले—यही आपके प्रस्तुतीकरण का ध्येय हो।

—जगदीशचन्द्र माथुर

नेपथ्य ८
प्रवेश
२
३
५
१
४
६
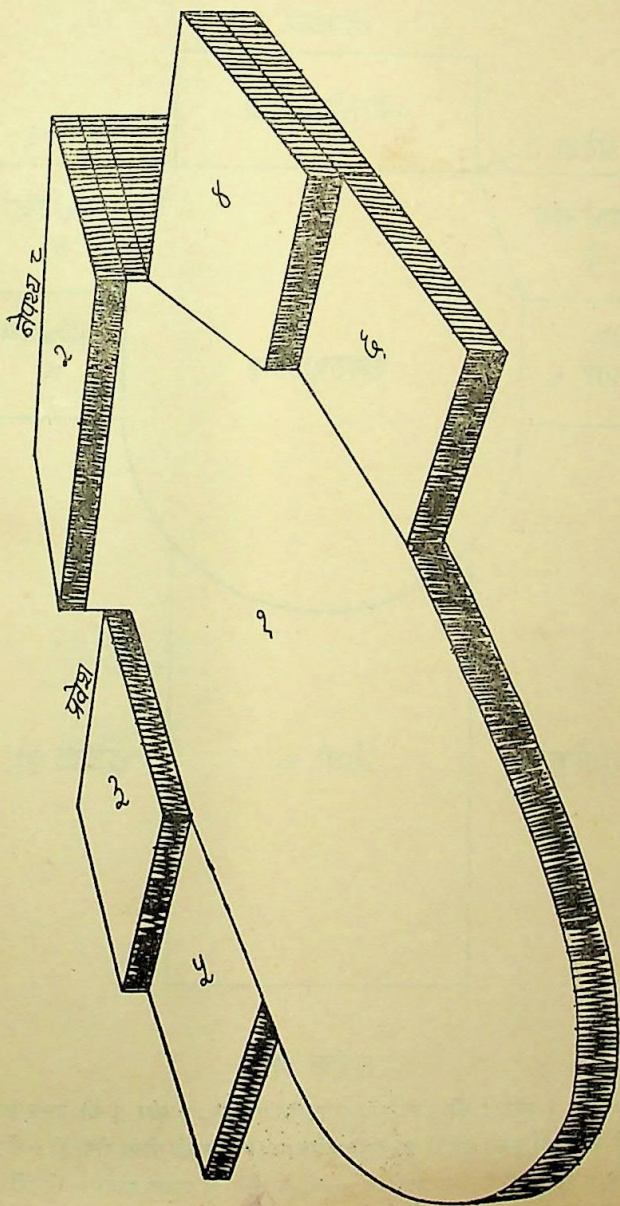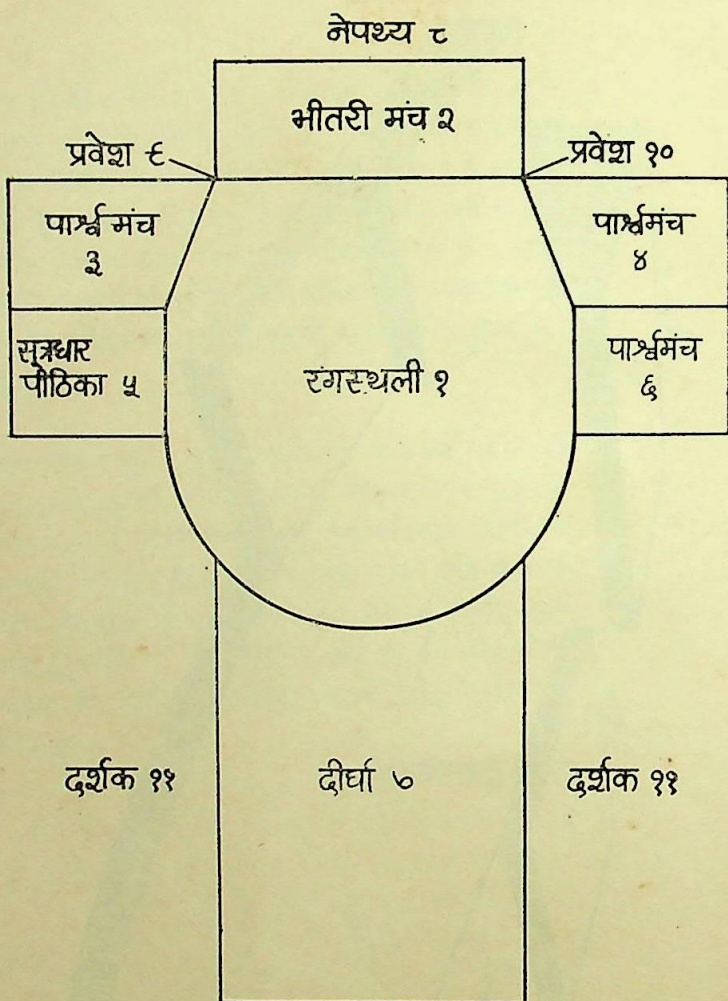
विशेष : २, ३ और ४ की ऊँचाई सबसे ज्यादा हो। १, ५ और ६ की उससे कम। ७ की उससे भी कम। दर्शकों का स्थान (प्रेक्षागृह) तो सबसे नीचा होगा ही। भीतरी मंच २ प्रायः अमानवीय या मनोधर्मी दृश्यों के लिए ही प्रयुक्त होगा। भीतरी मंच पर प्रकाश नीलाभ और मन्द हो तो अच्छा होगा।

दशरथ
नन्दन

पात्र

तुलसीदास
सूत्रधार
वशिष्ठ
दशरथ
शृंगी
अग्नि
कौशल्या
विश्वामित्र
राम
लक्ष्मण
ताड़का
जनक
सीता
महारानी
शतानन्द
परशुराम

भक्तमण्डली
वृन्द वाचक
प्रतिहारी
शिष्य
मुनिगण
वटुक
युवतियाँ
पुरुषगण
बालक
सखियाँ
देवी
सेवक
राजागण
भाट

अंक : एक

गुसाईं तुलसीदास तथा उनके साथ एक भक्तमंडली मंच पर आकर वंदना-समूह के रूप में खड़े होते हैं। राग-निबद्ध वृन्दगान के रूप में वंदना करते हैं। प्रत्येक सोरठे को पहले गुसाईंजी स्पष्ट शब्दों में गाते हैं और भक्तमंडली उसी तरह उसे दोहराती है।

वन्दना

सो० जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबरबदन ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ।।१।।

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन ।।२।।

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन ।।३।।

कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन ।।४।।

बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।।५।।

उसके बाद तुलसीदास एक पीठिका पर बैठते हैं । उनके साथी वृन्द-गायक नीचे आसन पर बैठ जाते हैं । यह स्थान मंच के एक कोने पर दर्शकों के निकट है । (देखिए मँच रूपरेखा का नम्बर ५ भाग ।) तुलसीदास के समक्ष प्राचीन ढंग की पाण्डुलिपि है जिस पर कभी-कभी ही दृष्टि डालने की जरूरत पड़ती है ।

तुलसीदास : रामनाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहेरहुं जौं चाहसि उजियार ।।

हे श्रोताओ, हे दर्शको ! मैं अकिंचन तुलसीदास अपने मुख रूपी द्वार की देहली पर रामनाम का मणिदीपक रखकर आपके सामने आया हूँ। इस अनुपम दीपक ने मेरे भीतर और बाहर जो उजाला कर दिया है, उस उजाले में मैं एक अलौकिक दृश्य देख पा रहा हूँ। देख रहा हूँ एक विशाल मानस ! ऐसा सरोवर जिसमें 'मधुर मनोहर मंगलकारी' यश का निर्मल और अथाह जल फैला है। किसका है वह यश ?

वृन्दगान : तुलसीदास और मंडली द्वारा

एक अनीह अरूप अनामा।
अज सच्चिदानन्द परधामा।।
व्यापक विश्वरूप भगवाना।
तेहिं धरि देह चरितकृत नाना।।

तुलसीदास : हे श्रोताओ, हे दर्शको ! उन परम कृपालु, शरणागत प्रेमी भगवान् ने रघुपति के रूप में भक्तों के हित अनेक लीलाएँ कीं। महामुनियों, कवियों और विद्वानों ने मुझसे पहले उन लीलाओं का विशद वर्णन किया है।···राजा गहरी और चौड़ी नदियों पर पुल बाँध देता है। उसके सहारे छोटी-छोटी चींटियाँ भी पुल को बिना श्रम पार कर लेती हैं। तो ऐसे ही मैं दासानुदास तुलसीदास पुरातन महाकवियों द्वारा वर्णित भगवान् की सुहावनी लीलाओं की अनगिनत तरंगों को अपनी अटपटी देशी भाषा की छोटी-सी अंजलि में सहज ही समेट पा रहा हूँ।

झाँकी १

मंच के उस भाग पर (नम्बर ५) जहाँ तुलसीदास और उनकी भक्तमंडली बैठी है क्रमशः अँधेरा हो जाता है। भीतरी रंगमंच (नम्बर २) में नीलाभ उजाला। उसमें देवी-देवताओं—ब्रह्मा, शिव, सरस्वती, नारद, इन्द्र, गणेश इत्यादि के आकार धीरे-धीरे स्पष्ट होते जाते हैं। उनके पीछे एक गौ। गौ के साथ ब्रह्माजी वार्तालाप करते प्रतीत होते हैं। (यदि यह नाटक दिन में खेला जा रहा हो तो नम्बर ५ और नम्बर १ के बीच एक पर्दा हो जो उस समय हटा दिया जाय।) देवी-देवताओं के चेहरों पर उपयुक्त मुखौटे लगे होने चाहिए। जब तुलसीदास बोलते हैं तब छायादृश्य में तदनुसार मूकाभिनय होना चाहिए।

तुलसीदास : (अंधेरे में से ही) एक समय की बात है। दुष्टों के अत्याचार से पीड़ित होने पर धरती माता गाय का रूप धारण कर ब्रह्माजी, शिवजी,

नारद, इन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओं और मुनियों के पास अपना दुखड़ा सुनाने पहुँची ।

वृन्द पाठ (मण्डली सहित)

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी ।
परम सभीत धरा अकुलानी ॥
धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी ।
गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥
निज संताप सुनाएसि रोई ।
काहू ते कछु काज न होई ॥

किसी से कुछ न हुआ । ब्रह्माजी को एक ही उपाय सूझा—जानत जन की पीर प्रभु भंजहि दारुन बिपति । उन प्रभु को कहाँ जाकर पुकारें ? शिवजी बोले ।

वृन्द पाठ

हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देसकाल दिसि बिदिसिहू माहीं ।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥

प्रेम से भगवान् ऐसे प्रकट होते हैं जैसे अग्नि, यह समझकर, वे लोग सर्वव्यापी परब्रह्म भगवान् की स्तुति वहीं से करने लगे ।

देवी-देवताओं की स्तुति वृन्दगान के रूप में । स्तुति की पहली दो पंक्तियाँ पुरुष स्वर में, उसके बाद की दो पंक्तियाँ

स्त्री स्वर में—इसी क्रम से गाई जाती हैं। अन्तिम दो पंक्तियाँ सारा देवी-देवगण समूह मिलकर गाता है। ध्यान रहे कि स्तुति का प्रत्येक शब्द स्पष्ट हो और वाद्य अत्यन्त मन्द। देव-देवीगण हाथ जोड़े स्तुति करते दीख पड़ते हैं।

स्तुति

पुरुष स्वर : जयजय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गोद्विजहितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥

स्त्री स्वर : पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥

पु० स्वर : जय जय अबिनासी सब घट बासी व्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुंदा॥

स्त्री स्वर : जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबृंदा।
निसि बासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥

पु० स्वर : जेहिंसृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा॥

स्त्री स्वर : जो भव भय भंजन मुनिमन रंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥

पु० स्वर : सारद श्रुति सेवा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना॥

सम्मिलित स्वर : भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा।
मुनिसिद्धि सकलसुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा॥

तुलसीदास : (अँधेरे ही में से) और तब निस्सीम अंतरिक्ष को गुंजायमान करती हुई एक गम्भीर गगन-गिरा सुनाई पड़ी।

देवलोक के नीले उजाले के ही सुदूर कोने में से निःसृत पहले तो बादलों के गम्भीर गर्जन की ऐसी आवाज जो समस्त वातावरण पर छाती हुई-सी जान पड़ती है। वही गर्जन मानो आकाशवाणी में परिवर्तित हो जाती है?

आकाशवाणी : जनि डरपहु मुनिसिद्ध सुरेसा।
तुम्हहि लागि धरिहउँ नरबेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥
नारद बचन सत्यसब करिहउँ।
परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई।
निर्भय होहु देव 'समुदाई॥

भीतरी रंगमंच (नम्बर ५) पर नीला प्रकाश और देवी-देवताओं के आकार धीरे-धीरे गायब हो जाते हैं और तुलसीदास और उनकी मंडली (नम्बर ५) पर प्रकाश केन्द्रीभूत होता है। (दिन के अभिनय में भीतरी रंगमंच

और नम्बर १ के बीच में पर्दा खिंच जाता है।) तुलसीदास पुनः बोलते हैं।

(झाँकी १ समाप्त)

तुलसी : गए देव सब निज निज धामा।
भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा ।।
वह विश्राम क्या था भगवान् के अवतार की प्रतीक्षा थी। ब्रह्माजी ने देवगणों को आदेश दिये, धरती पर हरिपद की सेवा के लिए अनेक देवता बनचर वानरों का रूप धारण कर वहाँ पहुँच गये।
बनचर देह धरी छिति माहीं।
अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं।
और यों वे महावीर बनचर—हरिमारग चितवहिं मति धीरा।

वृन्दवाचक १ : और हरि ने जन्म कहाँ लिया ?

तुलसी : कोसल प्रदेस में।

वृन्दवाचक २ : किसके यहाँ ?

तुलसी : अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ।
बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ॥

वृन्दवाचक ३ : तो क्या उससे पहले राजा दशरथ के कोई पुत्र नहीं था ?

तुलसी : नहीं।
एक बार भूपति मन माहीं।
भई गलानि मोरे सुत नाहीं ॥
उन्होंने अपने मन की बात अपने गुरु वसिष्ठ जी से कही। अनेक विधि से गुरु ने उन्हें समझाया और कहा—
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी।
त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी।

वृन्दवाचक ४ : भगवान् की अनुकम्पा।

वृन्दवाचक २ : और गुरु वसिष्ठ का आशीर्वाद। कोई उपाय किया वसिष्ठ जी ने ?

तुलसी : हाँ,
सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा।
पुत्रकाम सुभ जग्य करावा ॥

वृन्दवाचक : पुत्रेष्टि यज्ञ ?

तुलसी : देखो !

प्रथम दृश्य

रंगमंच के भाग १ रंगस्थली—पर प्रकाश होने लगता है और भाग ५ सूत्रधार स्थल पर अंधकार। प्रकाश हो जाने पर दीखते हैं—शृंगी ऋषि, उनके एक-दो शिष्य, वसिष्ठ, दशरथ तथा कुछ अनुचर। बीच में यज्ञ-कुण्ड, हविष्य इत्यादि। यज्ञ-कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित। (दिन के अभिनय में व्यवस्था इस प्रकार हो : जब तुलसीदास अन्य वृन्दवाचकों से वार्तालाप कर रहे हों तब भाग १ पर कथकली के प्रमुख नायकों के अवतरण के पूर्व जैसे होता है, ऐसे ही दो व्यक्ति एक पर्दे को पकड़े हुए रंगस्थली पर आयें और उस पर्दे के पीछे यज्ञ की सामग्री तत्परता से रख दी जाय, शृंगी वसिष्ठ, दशरथ इत्यादि बैठ जाँय। वाचकवृन्द का संवाद समाप्त होते ही पर्दा हटा लिया जाय। खींचने या ऊपर से

अपने आप गिरनेवाले ड्रापकर्टेन की जरूरत नहीं है।) होम के मन्त्र शृंगी ऋषि और उनके शिष्य बोल रहे हैं और आहुतियाँ डाल रहे हैं। थोड़ी देर के लिए मौन और रुकने के बाद।

शृंगी : राजन्! अब मैं अन्तिम आहुति देता हूँ। इसके बाद एकाग्रचित्त ध्यानलीन होकर इसी स्थान पर बैठे रहें।

दशरथ : जो आज्ञा मुनिवर। (**मंद स्वर में वसिष्ठ से**) गुरुदेव, क्या कौशल्या को यहाँ नहीं बुलाया जा सकता?

वसिष्ठ : क्यों, राजन्?

दशरथ : इसलिए कि एकाग्रचित्त होते-होते मुझे लगता है···लगता है कि मैं और कौशल्या 'हम' नहीं हैं।···कोई और दम्पति हैं, और युगों पूर्व··· कल्प कल्पान्त पहले···कहीं दूर घने जंगल में घोर तपस्या कर रहे हैं···।

शृंगी : शांत, राजन्!···नेत्र मूँदिये। यज्ञपुरुष अग्निदेव का ध्यान कीजिये।

दशरथ : जो आज्ञा···।

शृंगी : अग्निदेव, दो तेजोमय मुख, लपटें जिनकी जटायें हैं, चार भुजायें, अंकुश जिनका अस्त्र है···। आँख मूँदकर ध्यान करें। (**शिष्य से**) उस अलग रखे पात्र को यहाँ लाओ, वत्स।

श्रृंगी समिधा और घृत पात्र इत्यादि सँजोते हैं।

दशरथ : (वसिष्ठ से उसी भाँति) आँखें मूँदते ही गुरुवर वहीं ध्यान चला जाता है।
बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा।
नारि समेत गवन बन कीन्हा।।
मुझे यह क्या हो रहा है, गुरुदेव ?

वसिष्ठ : ये शुभ लक्षण हैं। युगों पहले की घोर तपस्या की स्मृति का उमड़ना शुभ लक्षण है राजन्…।

दशरथ : लेकिन कौशल्या ?

वसिष्ठ : बुलाइयेगा। लेकिन अभी नहीं।

श्रृंगी ऋषि की समिधा तैयार हो जाती है।

श्रृंगी : राजन् ! अब मैं समग्र समिधा की यह आहुति अग्निदेव को समर्पित करता हूँ।

स्वाहा के साथ समिधा यज्ञकुण्ड में डालते हैं। अग्नि प्रज्वलित होती है। अग्नि के धू-धू होकर ज्वाला के उठने की आवाज, ज्यों-ज्यों आवाज बढ़ती है त्यों-त्यों भीतरी रंगमंच (नम्बर १) में नीलाभ उजाला और उसमें अग्निदेव का आकार स्पष्ट होता जाता है। अग्निदेव का

मुखौटा तेजोमय है, जटायें लाल हैं—
अग्निशिखाओं की तरह। चार भुजाएँ
हैं। एक हाथ में अंकुश है, एक में एक
पात्र-चरु। दो हाथ वरद मुद्रा में हैं।
(दिन के अभिनय में बिना नीलाभ उजाले
के भी वातावरण पैदा हो सकता है।
कथकली के पर्दे की भाँति पर्दे को
क्रमशः गिराने और उठाने से वैसा ही
आभास हो सकता है।) अग्निदेव भीतरी
रंगमंच १ पर ही रहते हैं। उनका
स्वर दूरागत और गम्भीर है, उनके
शब्द धीरे-धीरे बोले जाते हैं, लेकिन
स्पष्ट हैं। यद्यपि अग्निदेव भीतरी रंग-
मंच से उतरकर भाग १ पर नहीं आते
तथापि जहाँ वे खड़े हैं वह स्थान यज्ञ-
कुण्ड के ठीक पीछे होने के कारण दर्शकों
को ऐसा प्रतीत होता है मानो वे यज्ञ-
कुण्ड में से ही निकले हैं।

श्रृंगी : आँखें खोलिए राजन्……"प्रगटे अगिनि चरू
कर लीन्हें।

दशरथ आँखें खोल नतमस्तक करबद्ध हो
जाते हैं।

अग्नि : (शब्दों के बीच कभी-कभी समिधा के कड़कने की
ध्वनि। लेकिन एक-एक शब्द स्पष्ट है।) अवध
नरेश दशरथ! श्रृंगी ऋषि की आहुति के

आग्रह ने हमें साकार प्रकट किया। हम प्रसन्न हैं। क्या कामना है तुम्हारी ?

दशरथ : भगवन्, आपके साकार दर्शन से मेरे मनोरथ पूरे हो गये। फिर भी—(**वसिष्ठ जी की ओर देखते हैं।**)

शृंगी : बोलिए राजन्।

दशरथ : भगवन्, मैंने गुरुवर वसिष्ठ से अपने मन की ग्लानि प्रकट की थी।

अग्नि : तो राजन्! वसिष्ठ मुनि के वचन, शृंगी ऋषि की मंत्र-साधना और तुम्हारी भक्तिपूर्ण याचना पूरे होंगे। यह लो—

यह हवि बाँटि देहु नृप जाई।
जथाजोग जेहि भाग बनाई॥

अग्निदेव के हाथों से दशरथ अपने स्थान से आगे बढ़कर चरु—(वह पात्र जिसमें हविष्यान्न से बनी खीर है) ग्रहण करते हैं। आह्लादित होकर दशरथ नेत्र मूंदकर, सिर झुकाकर वन्दना करते हैं।

दशरथ : मैं क्या कहूँ भगवन्। परमानन्द मगन हूँ। मेरे तो हरष न हृदय समाय।...**नीलाभ उजाला कम होता जाता है और अग्निदेव का आकार भी धुँधला। अग्निदेव लुप्त हो जाते हैं।**

(दिन के अभिनय में नं० ५ का पर्दा खिंच जाता है। दशरथ आँख खोलने पर पुनः बोलना प्रारम्भ करते हैं।) भगवन् आप···अरे !

शृंगी : अग्निदेव तो अदृश्य हो गए राजन्। आपकी मंगल विधि सम्पूर्ण हुई। वसिष्ठ मुनि, मैं आपकी अतिथिशाला में जाकर वहाँ विश्राम करूँगा। आप राजन् से आगे का यथोचित कार्य कराइये। (प्रस्थान। उनके खड़ाउओं की मंद होती हुई ध्वनि।)

वसिष्ठ : अब बुलाइये महारानी कौशल्या को राजन् !

दशरथ : प्रतिहारी, पटरानी को सादर यहाँ ले आओ।

प्रतिहारी : जो आज्ञा। (जाता है।)

वसिष्ठ : अग्निदेवता के दिये हुए इस चरु में जो पायस है उसका आधा भाग इस सुवर्ण पात्र में अपने ही हाथों डालें राजन्। (वसिष्ठ एक छोटा सुवर्ण कटोरा आगे बढ़ाते हैं और दशरथ खीर को उसमें डालना प्रारम्भ करते हैं।) बस। (महारानी कौशल्या का प्रवेश। करबद्ध।)

कौशल्या : आर्यपुत्र आपने मुझे ही बुलाया ? किन्तु कैकेयी और सुमित्रा भी तो झरोखे के उस ओर प्रतीक्षा कर रही हैं। उन्हें भी यहाँ आने का आदेश दें।

दशरथ : ठहरो कौशल्या।···बैठो।··· (दोनों बैठते हैं।)

सुनो, जब श्रृंगी ऋषि के अन्तिम आहुति देते समय मैं उनके आदेशानुसार आँख मूँदकर ध्यानमग्न होने लगा तो मुझे जान पड़ा कि युगयुगों पहले किसी बीहड़ जंगल में तुम और मैं न जाने कैसी अन्तहीन तपस्या में लीन बैठे हैं।

वसिष्ठ : **(कौशल्या को आँख बन्द किये ध्यानलीन होते देखकर)** महारानी, यह क्या? नेत्र न मूँदिये। यह ध्यानावस्थित होने का मुहूर्त नहीं है। यह देखिए...

कौशल्या : **(तन्द्रिल दूरागत से स्वर में)** हाँ, आर्यपुत्र।... वह दृश्य इस क्षण मेरे भी सामने स्पष्ट होता जा रहा है। देख रही हूँ—अपने कृश शरीर पर मुनियों के परिधान पहने हुए हम लोग केवल कन्दमूल खाकर ब्रह्म सच्चिदानन्द का सुमिरन कर रहे हैं।

दशरथ : **(उसी स्वप्निल स्वर में)** और भी कौशल्या, और भी।... कुछ समय बाद हम कन्दमूल भी त्याग देते हैं। केवल जल पीकर तप कर रहे हैं।...कब तक...कब तक?

कौशल्या : हजारों बरस तक।...छह हजार बरस तक... जो...जो छह प्रहर से ही जान पड़ते हैं।

दशरथ : कोई अदृश्य शक्ति हमें दृढ़ इच्छा शक्ति देती है और हम...

कौशल्या : जल भी छोड़ देते हैं ।···न भूख, न प्यास लगती है हमें ।

दशरथ : केवल वायु के आधार पर रहते हैं ।

कौशल्या : केवल वायु का आधार···घोर तप में ऐसे तल्लीन हैं कि सात हजार बरस बीतते भी नहीं जान पड़ते आर्यपुत्र !

दशरथ : उसके बाद···उसके बाद भी रानी ।

कौशल्या : हाँ, आर्यपुत्र ! उसके बाद भी देख रही हूँ मैं कि···कि हम एक-एक पैर पर खड़े हैं··· लगातार ।

दशरथ : और······और लगता है हम श्वास भी नहीं लेते । एक पैर पर खड़े हैं, निश्चल, नि:श्वास ।

कौशल्या : निश्चल, नि:श्वास ! दस सहस्र बरस तक !

दशरथ : कोई आता है हमारे पास ।

कौशल्या : देवता लोग ! वे आते हैं और···

दशरथ : माँगहु बर बहु भाँति लोभाए ।

कौशल्या : किन्तु हम लोग दृढ़ हैं । परम धीर नहिं चले चलाए ।

दशरथ : अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा ।

कौशल्या : तदपि मनांग मनहिं महिं पीरा ।

दशरथ : यह क्या···यह क्या···सुनाई पड़ रहा है ?

कौशल्या : एक सर्वव्यापी स्वर ।

दशरथ : अलौकिक आकाशवाणी ।

कौशल्या : मृतक जिआवनि गिरा सुहाई ।

दशरथ : श्रवन रंध्र होइ उर जब आई।

कौशल्या : मागु मागु बर भै नभ बानी।

दशरथ : परम गम्भीर कृपामृत सानी।··· उसे सुनकर हमारे शरीर प्रफुल्लित हो जाते हैं।

कौशल्या : हमारे हृदय में प्रेम नहीं समाता।

दशरथ : गद्गद् होकर दंडवत् होकर हम कुछ कहते हैं।

कौशल्या : जौं अनाथ हित हम पर नेहू।

दशरथ : तौं प्रसन्न होइ यह बर देहू।

कौशल्या : जो सरूप बस सिव मन माहीं।

दशरथ : जेहि कारन मुनि जतन कराहीं।

कौशल्या : जो भुसुंडि मन मानस हंसा।

दशरथ : सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा।

कौशल्या : देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।

दशरथ : कृपा करहु प्रनतारतिमोचन।

झाँकी २

मंच के भाग १ पर अँधेरा हो जाता है। भीतरी रंगमंच पर नीलाभ उजाला। उसमें दीख पड़ते हैं तपस्वी और तपस्विनी के वेश में मनु और शतरूपा। वे दण्ड-वत् कर रहे हैं और सामने खड़े हैं भक्त

वत्सल भगवान्—कटि में निषंग, बाएँ हाथ में धनुष-बाण, नीले कमल-सा शरीर, शरदमयंक-सा मुख, विधुकर-निकर-विनिंदक मुस्कान, ललित चितवन, ललाट पर तिलक, चमकता पटल, कुण्डल मकर-मुकुट से सुशोभित सिर, उर पर श्रीवत्स, गले में रुचिर वन-माला और आभूषण, केहरी के-से कंधों पर यज्ञोपवीत—साक्षात् भगवान् श्री रामचन्द्र और उनके बराबर में आदि-शक्ति स्वरूपा, छविनिधि भगवती सीता। (दिन के अभिनय में भीतरी रंगमंच २ और रंगस्थली १ के बीच का पर्दा खिच जाता है और यह दृश्य दीख पड़ता है।) यह झाँकी कुछ क्षणों के लिए दीखती है। पुनः रंगमंच २ पर अँधेरा (या पर्दा) और रंगस्थली १ पर प्रकाश।

दशरथ : छवि समुद्र हरि रूप बिलोकी।
एकटक रहे नयन पट रोकी।
चितवहिं सादर रूप अनूपा।

वसिष्ठ : (बीच में ही रोककर) तृप्ति न मानहिं मनुस-तरूपा!...हाँ राजन्! आप दोनों उस जन्म में मनु और उनकी पत्नि शतरूपा थे। आज आप दोनों के उस महातप और भगवान् के वरदान

के फलस्वरूप······

दशरथ : (वैसे ही स्वर में) वरदान !···हमने कहा—
एक लालसा बड़ उर माही ।
सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं ।

कौशल्या : तुम्हहिं देत अति सुगम गोसाईं ।
अगम लाग मोहि निज कृपनाई ।।

दशरथ : दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ ।
चाहउ तुम्हरि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ ।।

वसिष्ठ : और वह वर मिला !···लेकिन वह सब भूल जाइए महाराज ! भूल जाइए । आप अब···

कौशल्या : कैसे भूल जायँ गुरुवर । भगवान् ने स्वयं कहा था—
मातु बिबेक अलौकिक तोरे ।
कबहुँ न मिटहिं अनुग्रह मोरे ।

वसिष्ठ : देवी, भगवान् स्वयं भुला देंगे और अवसर पड़ने पर स्वयं याद दिला देंगे । यही तो भगवान् की लीला होने जा रही है । उनकी लौकिक लीला में यदि आपको उस अलौकिक छवि की स्मृति पानी है तो इस समय भूल जाइए कि आप दोनों कभी मनु और शतरूपा थे, जिनके घोर तप से स्वयं भगवान् अपनी आदि-शक्ति के साथ प्रकट होकर वह दैवी वरदान आपको दे गये हैं ।······अब आप अवध-नरेश

दशरथ हैं जिन्होंने संतान-प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। देवी, अग्नि देवता द्वारा प्रदत्त इस पायस खीर का आधा भाग अपने पति से सादर ग्रहण करें। उठाइये यह सुवर्ण पात्र राजन्, डालिए चरु में से पायस··· (**दशरथ पायस डालते हैं···**) धीरे-धीरे।··· बस, बस!···प्रतिहारी, देवी कैकेयी और सुमित्रा को बुलाओ।

दशरथ : (**साधारण वाणी**) उन दोनों को किस विधि से देना होगा गुरुवर?

वसिष्ठ : जैसे-जैसे मैं बताता चलूँ महाराज!··· (**कैकेयी सुमित्रा का प्रवेश**) आइए देवी कैकेयी, आइए देवी सुमित्रा! इधर बैठें। यह लीजिये अपने-अपने सुवर्ण-पात्र।···राजन्! देवी कैकेयी, चरु में से आधा भाग पीजिए··· ठीक!···

कैकेयी : अनुग्रहीत हूँ राजन्! गुरुदेव आपकी कृपा हमारा सम्बल है।

वसिष्ठ : देवी कौशल्या, देवी कैकेयी! अपने पतिदेव के हाथों के नीचे अपने-अपने हाथ रखकर चरुपात्र सम्हालिये।···हाँ···यों।···राजन् अब शेष पायस को दैवी सुमित्रा के स्वर्णपात्र में डालिये।···चरु खाली हो गया न?··· ठीक। (**सब लोग खड़े हो जाते हैं।**) देवियो, इस दैवी

प्रसाद को अब आप अन्त:पुर के अपने-अपने कक्ष में जाकर प्रसन्न वदन होकर पान करें।... राजन् आपके लिए विश्राम और फिर आतुर परीक्षा।...आइये !

रानियों का अन्तःपुर की ओर, और दशरथ और वसिष्ठ का दूसरी ओर प्रस्थान।

प्रथम दृश्य समाप्त

तुलसीदास : (सस्वर पाठ)

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी।
भई हृदयं हरषित सुखभारी।।
मंदिर महँ सब राजहिं रानी।
सोभासील तेज की खानी।।

दोपहर का समय। न तो अति शीत और न घाम ! शीतल, मन्द, सुरभित वायु बह रही थी। कुसुमित बन-मणियों से भरे गिरिपर्वत, नदियों अमृत की धाराओं-सा जल। ऐसी पावन घड़ी में अदृश्यरूप हो बिरंचि इत्यादि देवताओं का अवधपुरी में जमघट।

चैत्रमास, नौमी तिथि, भौमवार गंधर्वों का गान ! सुमनांजलियों से विमल गगन छा गया और उसके बाद—

सस्वर वृन्दगान

भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमनहारी अदभुत रूप विचारी ।।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन वनमाला नयन विसाला सोभासिंधु खरारी ।।

तुलसी : जन्म के पूर्व भगवान् के उस अद्‌भुत चतुर्भुजी रूप को देखकर कौशल्या माता को पुनः भगवान् के वरदान की याद आयी और वे बोलीं—

वृन्दवाचक : कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करो अनन्ता
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुराना भनंता।
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गार्वाहि श्रुतिसन्ता।
सो ममहित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ।।
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मतिथिर न रहै ।।

तुलसी : भगवान् ने मधुर मुस्कान के साथ कौशल्या जी को अपनी माया का रहस्य समझाया।

वृन्दवाचक : उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहै।

तुलसी : कौशल्या माता का भ्रम दूर हुआ। उन्होंने भगवान् से निवेदन किया।

वृन्दवाचक : माता पुनि बोली सोमति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥

तुलसी : और तब भगवान् ने साधारण शिशुओं की भाँति जन्म लेने का व्यवहार किया।

वृन्दवाचक : सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परइ भवकूपा॥

तुलसी : व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद॥
कौन हैं ये बालक पीत झगुलिया पहने, घुटनों और हाथों के बल इधर-उधर विचरते हैं? कौन हैं ये सुन्दर, श्रवन, सुचारु कपोला, अति प्रिय मधुर तोतरे बोला? क्या ये वही हैं जिन्हें 'सुख सन्देह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत' कहा जाता है? क्या वही परब्रह्म दम्पति परम प्रेमबस कर सिसुचरित पुनीत?

वृन्दवाचक : परम मनोहर चरित अपारा।
करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥
मन क्रम बचन अगोचर जोई।

दसरथ अजिर विचर प्रभु सोई ॥
भोजन करत बोल जब राजा ।
नहिं आवत तजि बाल समाजा ॥
कौसल्या जब बोलन जाई ।
ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहिं पराई ॥

तुलसी : निगम नेति सिव अन्त न पावा ।
ताहि धरै जननी हठि धावा ॥

वृन्दवाचक : भयउ कुमार जबहिं सब भ्राता ।
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ॥
गुरुगृह गए पढ़न रघुराई ।
अलप काल विद्या सब आई ॥

तुलसी : जाकी सहज स्वास श्रुति चारी ।
सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ॥

वृन्दवाचक : बंधुसखा सँग लेहि बोलाई ।
बन मृगया नित खेलहिं जाई ॥
जेहिं बिधि सुखी होहिं पुर लोगा ।
करहिं कृपानिधि सोई संजोगा ॥

तुलसी : व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना बिधि, करत चरित अनूप ॥

द्वितीय दृश्य

तुलसीदास के अंतिम शब्दों के साथ ही सूत्रधार-पीठिका पर अंधकार और रंगस्थली १ एवं पार्श्वमंच ४ पर प्रकाश। पार्श्वमंच पर विश्वामित्र और उनका एक शिष्य। वे धीरे-धीरे पार्श्वमंच से उतरकर रंगस्थली की ओर चलते हैं। सरयूतट से राजदरबार तक पहुँचने का आभास देने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों रंगस्थली के एक सिरे से प्रारम्भ करके उसके आयताकार का भ्रमण करें मानो अयोध्या नगरी की वीथिकाओं और सड़कों पर होकर अपने निर्देश की ओर बढ़ रहे हैं। शिष्य विश्वामित्र के पीछे-पीछे चल रहा है और दोनों में कुछ वार्तालाप होता चलता है। इस बीच रंगस्थली के दूसरे सिरे पर दशरथ और वसिष्ठ तथा कुछ अन्य विप्र आते हैं

और आतुर मुद्रा में सामने मुनि के आगमन की प्रती हैं क्षकरा रहे। उनके ऊपर प्रकाश कम है। विश्वामित्र और शिष्य पर ही विशेष प्रकाश पड़ रहा है और उनके साथ-साथ चलता जाता है। कभी-कभी वे दोनों रुक भी जाते हैं।

विश्वा० : पुत्र !

शिष्य : आज्ञा महाराज।

विश्वा० : इस समय मेरे-जैसे बनवासी तपस्वी का मन भी कुछ अस्थिर है।

शिष्य : इस विभिन्न शोभामयी और सम्पन्न अयोध्या-नगरी के वैभव को देखकर किसका मन विचलित न होगा आचार्य ?

विश्वा० : वैभव पर अचरज नहीं पुत्र, मनोरथ की हलचल !

शिष्य : राजा दशरथ को आपके आगमन की सूचना मिल चुकी है। वे आपके सत्कार और आपके मनोरथ को पूरा करने के लिए स्वयं ही उत्सुक होंगे। शीघ्र ही हमारे आश्रम पर अत्याचार करनेवाले हमारी तपस्या और यज्ञ-कार्य में विघ्न डालनेवाले निशाचरों के विनाश की व्यवस्था अवध-नरेश कर देंगे।

विश्वा० : कुछ मनोरथ ऐसे होते हैं, जिन्हें पाने की इच्छा मन को विचलित करती है। पर एक

ऐसा मनोरथ भी है जिसके पूरा होने की घड़ी करीब आते ही मनुष्य अपने को तैयार नहीं कर पाता।

शिष्य : मैं समझा नहीं, गुरुवर !

विश्वा० : समझते ही वाणी मौन हो जाती है, पुत्र !

जेहि जानें जग जाइ हेराई।
जागें जथा सपन भ्रमजाई।।
बंदउ बालरूप सोई रामू।
सबसिधि सुलभ जपत जिसु नामू।।
मंगल भवन अमंगल हारी।
द्रवउँ सो दसरथ अजिर बिहारी।।

शिष्य : मुनिवर ! वे भगवान्, श्रुति और वेद जिनका गुणगान करते हैं, ऋषि-मुनि जिनका ध्यान करते हैं, जो अनादि और अनंत हैं उन भगवान् को आप दशरथ के महल में देखेंगे।

विश्वा० : कैसे बताऊँ तुम्हें पुत्र मैं ?—सुनो ! एक बार पार्वती के मन में यही संदेह उपजा। शिवजी ने उन्हें बताया—

आदि अंत कोउ जासु न पावा।
मति अनुमानि निगम अस गावा।।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।

तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहइ थान बिनु वास असेषा ।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी ।
महिमा जासु जाइ नहीं बरनी ।।

शिष्य : मुनिवर, उपनिषद् पढ़ाते समय आपने परम ब्रह्म की यही व्याख्या तो की थी, अनेक बार ।

विश्वा० : (भाव विभोर तनिक रुक कर, मानो घोषणा करते हों।)

शिवजी ने कहा--

जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसल पति भगवान् ।।

विश्वा० : राजा दशरथ के महल तक तो हम आ पहुँचे । वह देखिये, आचार्य, आपके स्वागत-सत्कार के लिए स्वयं अवध-नरेश विप्रगण सहित इधर ही आ रहे हैं ।

दशरथ रंगस्थली के आगे के भाग की ओर बढ़ते हैं।

दशरथ : महामुनि विश्वामित्र ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें ?

दण्डवत् करते हैं । अन्य लोग झुककर नमस्कार । विश्वामित्र अपने हाथों से दशरथ को उठाते हैं ।

विश्वा० : प्रजापालक, सुधी शासक राजन् ! आपका कल्याण हो ।

वसिष्ठ : आपके दर्शनलाभ से मैं कृतकृत्य हूँ, मुनि श्रेष्ठ !

विश्वा० : बंधुवर वशिष्ठ, बहुत समय बाद आपके सत्संग का यह अवसर मेरे लिए सुखदायी है ।

दशरथ : यह समाचार पाकर कि शुभविपिन में साधना और यज्ञादि में लीन कौशिक महामुनि अयोध्या नगरी में पधार रहे हैं, मैं अपने सौभाग्य पर आह्लादित हो गया, महाराज !···आइये, मेरे तुच्छ महल में प्रवेश करके उसे पवित्र कीजिये ।

भीतरी रंगमंच २ पर प्रकाश । (दिन के अभिनय में रंगस्थली १ और भीतरी रंचमंच २ के बीच का पर्दा खिंच जाता है ।) पार्श्वमंचों पर से प्रकाश लुप्त । भीतरी मंच पर दशरथ के दरबार का दृश्य । बीच में राजा का सिंहासन । दोनों तरफ अन्य आसन । दशरथ विश्वामित्र का हाथ पकड़कर उन्हें अपने सिंहासन पर बिठाते हैं । निकट स्वयं बैठते हैं । दूसरी ओर वसिष्ठ, सुमंत्र तथा अन्य व्यक्ति । प्रतिहारी एवं अनुचर खड़े हैं ।

दशरथ : मुनिवर ! मो सम आजु धन्य नहीं दूजा ।
(अनुचर चरण धोने का बरतन और जलपात्र लाते

हैं। राजा पात्र में से जल विश्वामित्र के चरणों में डालते हैं।)आपके चरण पखारने और यथोचित पूजन करने का सौभाग्य मुझे मिल रहा है। (विश्वामित्र आशीर्वाद की मुद्रा में दोनों हाथ उठाते हैं। दूसरे अनुचर कुछ थालियों में दही-शहद का मधुपर्क, मेवाफल इत्यादि लाते हैं। दशरथ एक थाली अपने हाथों से विश्वामित्र के सामने रखते हैं और हाथ जोड़कर कहते हैं।) ग्रहण करें महाराज !

विश्वा० : (एक पात्र उठाकर मुख से पान करते हैं और फिर शिष्य को पकड़ा देते हैं। शिष्य का थाली लेकर प्रस्थान।) आपका अनंत कल्याण हो राजन् ! आपके इस भव्य भवन में आदर और श्रद्धा से परिपूर्ण आपका सत्कार पाकर हम हृदय से प्रसन्न हैं !…पर… (चारों ओर देखते हैं)

वशिष्ठ : (संकेत समझकर) राजन्, चारों कुमारों को तो मुनि विश्वामित्र के समक्ष प्रस्तुत कीजिये !

दशरथ : मुनिवर के आगमन की अनुकंपा से मैं इतना अभिभूत हूँ कि उनकी पावन चरण-रज से अपने बच्चों तक को वंचित किये रहा। (प्रतिहारी से) प्रतिहारी ! राम, लक्षमण, भरत शत्रुघ्न को यहाँ ले आओ।……आप सब ऋषि-मुनियों के आशीर्वाद ही से तो मुझे ये चार बालक प्राप्त हुए हैं।…

विश्वा० : बालक ! (किंचित् मुस्कान और फिर भावविभोर,

जिसे दशरथ लक्षित नहीं कर पाते ।)

ग्यान बिराग सकल गुन अयना ।
सो प्रभु मैं देखत भरि नयना ।।

दशरथ : मैं अपने पुत्रों की बात कर रहा था मुनिवर ।...
चारिउ सील रूप गुन धामा ।
तदपि अधिक सुख सागर रामा ।।

बड़े बेटे के आचरण का अनुसरण तीनों करते हैं । मैं और इनकी माताएँ ही नहीं, सारा नगर चारों पर मुग्ध है ।

कोसलपुर बासी नर नारि, बृद्ध अरु बाल ।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ रामकृपाल ।।

विश्वा० : क्यों नहीं राजन् !... (मानो अपने ही से) कृपालु राम !...राम
राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी ।
सर्ब रहित सब उर पुर बासी ।।

दशरथ : (मानो विश्वामित्र की बात सुनी ही न हो) और बड़े आज्ञाकारी हैं राम ।
बेद पुरान सुनहिं मन लाई ।
आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ।।
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा ।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा ।।

वसिष्ठ : आयसु मागि करहिं पुरकाजा ।
देखि चरित हरषइ मन राजा ।।
मुनिवर, पिता की भावना आप समझ ही गये

होंगे ।

विश्वा० : और आप क्या पाते हैं, बन्धुवर ?

वसिष्ठ : राम-जैसा मर्यादाशील, विद्याविनय-निपुण शिष्य पाकर कौन गुरु संतुष्ट न होगा ?

विश्वा० : (दोनों का संवाद दूसरे ही स्तर पर पहुँच जाता है।) और भी कुछ ?

वसिष्ठ : बंधु, मैं पुरोहित हूँ, आप संन्यासी हैं ।

विश्वा० : क्या मेरे तप का फल आप पाते रहे हैं ?

वसिष्ठ : वह देखिए !

राम और उनके पीछे लक्ष्मण, भरत और उनके पीछे शत्रुघ्न का प्रवेश ! थोड़ी देर के लिए प्रकाश केन्द्रित हो जाता है एक ओर तो राम पर और दूसरी ओर विश्वामित्र पर, जो खड़े हो जाते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि उस मौन क्षण में दोनों के बीच एक अनिर्वचनीय संदेश का विनिमय होता है । विश्वामित्र की टकटकी लगी है राम के भासमान् स्वरूप पर । विभोर होकर वे आप-ही-आप बोल उठते हैं ।

विश्वा : (सस्वर)

अरुन नयन उर बाहु बिसाला ।
नील जलज तनु स्याम तमाला ।।
कटि पर पीत कसें बर माथा ।
रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ।।

एकटक देख रहे हैं कि दशरथ के बोलने के साथ ही मानो चमत्कार लुप्त होता है। प्रकाश समस्त दरबार पर फैल जाता है।

दशरथ : अरे आप खड़े क्यों हैं महामुनि ? बैठिये बैठिये। ...राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न—आगे आओ बैठो और कौशिक महामुनि विश्वामित्र के चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करो !

चारों विश्वामित्र के चरण छूते हैं और फिर विनयशील मुद्रा में खड़े हो जाते हैं।

विश्वा० : आशीर्वाद !...राजन् मेरे तो नेत्र—

भए मगन देखत मुख सोभा।
जनु चकोर पूरन ससिलोभा ॥

दशरथ : जैसे प्रियदर्शी हैं ऐसे ही गुणवान् !

विश्वा० : युगयुगों तक इनकी यह शोभा और इनकी मर्यादा जन-जन का मन मोहती रहे—यही तो आशीर्वाद दे सकता हूँ राजन् !

दशरथ : अभी तो किशोर हैं।......जाओ पुत्रो, अपनी दिनचर्या पूरी करो। (**चारों को प्रणाम करके प्रस्थान**)

विश्वा० : (**वसिष्ठ से**) बंधुवर, यह भी कामना है मेरी, कि अनंतकाल तक मेरा आशीर्वाद राम के चरणों का अनुगामी बना रहे।

वसिष्ठ : आपका मनोरथ पूरा हुआ, वयस्य ?

विश्वा० : हुआ भी और नहीं भी ।

दशरथ : महामुनि, आपने मेरे यहाँ पधार कर जो कृपा की है वह अन्य किसी को नहीं मिली । अब आप अपने आगमन का कारण बताकर अपनी सेवा करने का मुझे अवसर दें ।

"कहउ सो करत न लावउँ बारा ।"

विश्वा० : राजन्, अपने आश्रम के विषय में एक चिंता मेरे मन में व्याप रही है ?

दशरथ : ऐसा क्यों मुनिश्रेष्ठ ?

विश्वा० : बात यह है कि जिस वन में मेरा आश्रम स्थित है, जहँ जपजग्य जोग मुनि करहीं—वहाँ मारीच, सुबाहु, ताड़का इत्यादि निशाचर-निशाचरी अत्यंत विघ्न डालते हैं । उनके अत्याचार से हम सब त्रस्त हैं ।

असुर समूह सतावहिं मोही !
मैं जाचन आयउँ नृप तोही ।।

दशरथ : इन पापियों का शीघ्र निराकरण होना आवश्यक है ।...मंत्रिवर सुमंत्र !

सुमंत्र : महाराज !

दशरथ : सेना की सब से बलवान् और अनुभवी टुकड़ी को तैयारी का आदेश दें ।

वसिष्ठ : सेना से मुनिवर का काम चल जायेगा ?

विश्वा० : नहीं, राजन् !

दशरथ : तब ?

विश्वा० : (रुकते हुए, शब्दों पर किंचित ठहरते हुए, स्पष्ट वाणी)

अनुज समेत देहु रघुनाथा।
निसिचर बध मैं होब सनाथा ।।

देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान ।।

सन्नाटा। दशरथ हतप्रभ और चुप।

वसिष्ठ : राजन् ! मुनिवर विश्वामित्र जैसे अतिथि के वचन सुनकर यों सहसा आपका मौन हो जाना उचित नहीं है। आप रघुवंशी राजाधिराज हैं। यह ठीक नहीं कि आपका "हृदय कंप मुखदुति कुमुलानी"......उत्तर दें, महाराज !

दशरथ : **(अटकती-सी वाणी, लेकिन शब्द बिल्कुल स्पष्ट)**

गुरुदेव !

चौथेपन पायउँ सुत चारी।
बिप्र बचन नहिं कहेहु विचारी ।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मेरे अतिथि हैं और उस पर भी विप्र !

माँगहु भूमि धेनु धन कोसा।
सर्बस देउँ आजु सहरोसा ।।
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं।
सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ।।
सब सुत प्रिय मोहिं प्रान कि नाईं।
राम देत नहिं बनइ गोसाईं ।।

(अन्तिम ऐसे करुण और मार्मिक ढंग से कहे जाते हैं कि क्षण भर को पुनः सन्नाटा) और फिर यह भी तो सोचिये,

कहँ निसिचर अति घोर कठोरा ।
कहँ सुंदर सुत परम किसोरा ॥

विश्वा० : **(कुछ विचार कर)** वसिष्ठजी । आप ही अवध-नरेश को आश्वस्त करें । पर इतना कह दूँ । कोशलपति का यह अनुपम सुतस्नेह देखकर मैं गद्‌गद् हूँ । कैसे भाग्यशाली हैं ये ?…… राजन् को बता दीजिये आप

सुनि नृपगिरा प्रेम रस सानी ।
हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी ॥

वसिष्ठ : **(दशरथ को समझाते हुए)** राजन् पिता के मोह को अलंकार समझिये कवच नहीं । आप क्षत्रिय हैं और आपका कर्त्तव्य है कि मुनियों के आश्रमों पर असुरों का जो अत्याचार हो रहा है उसे बंद करने के लिए सबसे समर्थ उपाय कीजिये ।…राम आपकी दृष्टि में हमेशा शिशु ही रहेंगे, यह मैं समझता हूँ । किंतु राम पुरुषसिंह हैं, वीर हैं, धीरमति हैं ।……मैं उनका गुरु यह जानता हूँ और आप—राम के पिता नहीं,—आप अवध-नरेश—आप भी इस सत्य से अपरिचित नहीं ।……इसलिए संदेह का नाश कीजिये ।

दशरथ : समझा गुरुदेव ! जो अस्त्र-शस्त्र विद्या आपने राम को दी है वही निशाचरों की आसुरी माया को काट सकती है, सेना नहीं ।

वसिष्ठ : यही समझ लीजिये । हो सकता है समय आने पर आपको एक और बात भी याद पड़े ।

दशरथ : क्या ?

वसिष्ठ : हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ।

विश्वा० : और भी ! 'प्रभु अवतरेउ हरन भवभारा ।'

दशरथ : प्रभु !···हरि !!···समझा नहीं गुरुदेव ?

वसिष्ठ : किसी दिन किसी घड़ी आपको स्वयं याद आयेगी कि मुनियों ने राम के लिए क्या कहा था । इस समय तो दोनों राजकुमारों को आदेश दीजिये और आशीर्वाद !—

राम और लक्ष्मण का प्रवेश

दशरथ : आ गये राम ? दोनों सामने तो आओ, मुनि-विश्वामित्र के समीप । सुनो, तुम्हें मुनि विश्वा-मित्र के साथ उनके आश्रम को जाना है, तुरंत।

राम : अहोभाग्य, आर्य !

दशरथ : मुनिवर के आश्रम में यज्ञ, तप, योगसाधना में जो निशाचर विघ्न डाल रहे हैं उनकी आसुरी शक्ति के विनाश की विद्या गुरु वसिष्ठ ने तुम्हें दी है ।

लक्ष्मण : हमारी विद्या का इससे बढ़कर सदुपयोग नहीं है, आर्य ! हमारे तरकश के बाण अभी से

आतुर हैं ।

राम : मुनिवर ने हमें इस पुण्य कार्य के लिए चुना, इसके लिए अनुग्रहीत हूँ ।

दशरथ : तुम क्षत्रिय-पुत्र हो । भुजबल और आत्मबल दोनों का ज्ञान गुरु वसिष्ठ से पा चुके हो । समझ लो कि अब तक प्राप्त शिक्षा का अभ्यास करने और शेष शिक्षा प्राप्त करने ही तुम महामुनि के साथ जा रहे हो !

राम : जो आज्ञा पितृवर ।

दशरथ : पितृ ! (आर्द्र स्वर) मैं यह कैसे भूल गया कि अवध-नरेश तुम दोनों का पिता भी है ? इधर आओ राम ! इधर आओ लक्ष्मण ! मेरे निकट !······तुम्हें हृदय से तो लगा लूँ । (स्नेहालिंगन)···मुनि विश्वामित्र, सुनिये !—

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ ।
तुम्ह मुनि पिता आन नहीं कोऊ ।।

(फिर रुककर राम लक्ष्मण)······आओ अपनी जननियों से विदा लेकर मुनिवर के साथ प्रस्थान करो ।······आओ ।

दशरथ के साथ राम और लक्ष्मण का प्रस्थान । पीछे-पीछे सुमंत्र, प्रतिहारीगण अनुचर का प्रस्थान । केवल विश्वामित्र और वसिष्ठ रह जाते हैं । दोनों धीरे-धीरे दूसरी ओर चलते हैं ।

विश्वा० : वसिष्ठ जी, कैसे कहूँ ?

सस्वर

स्याम गौर सुंदर दोऊ भाई।
बिस्वामित्र महानिधि पाई।।
प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना।
मोहि हित पिता तजे भगवाना।।

वसिष्ठ की रहस्यमयी मुस्कान। दोनों का प्रस्थान। भीतरी रंगमंच २ पर अंधकार। तुलसीदास और वृन्दवाचक का स्वर।

तुलसी : (वृन्दवाचकों सहित)

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन।।

द्वितीय दृश्य समाप्त

अंक : दो

प्रारम्भ में थोड़ी देर के लिए प्रकाश-पुंज तुलसीदास और उनकी मंडली पर केन्द्रित रहता है और वे उसी दोहे की पुनरावृत्ति करते हैं जिसे उन्होंने अंक १ के अंत में कहा था।

तुलसी : (मंडली-सहित सस्वर)

पुरुषसिंह दोउ वीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन॥

प्रथम दृश्य

सूत्रधार पीठिका पर अँधेरा और पार्श्व-मंच ३ पर उजाला, जिसमें राम लक्ष्मण और विश्वामित्र दीख पड़ते हैं। रंग-स्थली १ पर भी प्रकाश जो दीर्घ रंग-स्थली ७ और भीतरी रंगमंच २ तक फैला है। भीतरी रंगमंच पर घने जंगल के प्रतीकस्वरूप कुछ झाड़ियाँ (या उनके कट-आउट) भीतरी रंगमंच के वातावरण में एक तरह के त्रास और घुटन का आभास। किन्तु जगह-जगह पुष्प लताएँ इत्यादि।

विश्वा० : राजकुमार, इस गहन वन को पार करते ही हम आश्रम पहुँच जायेंगे। किंतु बहुत सतर्क होकर इस जंगल की पगडंडी पर चलना होगा।

लक्ष्मण : अभी तक तो हमारी सतर्कता को चुनौती मिली नहीं मुनिवर !

विश्वा० : राजकुमार, यह मार्ग कुछ भिन्न है।

राम : स्थान रमणीक तो है महामुनि।

विश्वा० : हाँ रमणीक है और भयावह भी। क्योंकि—
(सतर्कता से भीतरी रंगमंच की ओर देखते हुए)
क्योंकि—(हठात्) वह देखिये राजकुमार—
उधर……

लक्ष्मण : नारी !……(धनुष पर हाथ रखते हुए)

विश्वा० : निशाचरी ताड़का ! हमारे आश्रम के लिए
भयंकर अभिशाप !

भीतरी रंगमंच २ की एक झाड़ी में से ताड़का निकलती दीख पड़ती है। राक्षसी मुखौटा, प्रज्ज्वलित-से रक्तिम नेत्र, मोटे लाल होंठ, काला शरीर, बड़े नाखून, हाथ में बधिक का-सा अस्त्र ! भीतरी रंगमंच से उतर कर रंगस्थली पर, सामने देखते हुए, धीरे-धीरे आगे बढ़ती है।

लक्ष्मण : (तरकश में से बाण निकालते हुए) भयंकर, नृशंस
निशाचरी !……आर्य, आज्ञा दें !

राम : दीन, दुर्भागिनी नारी !……ठहरो लक्ष्मण !

ताड़का इस बीच दीर्घ-रंगस्थली ३ पर पहुँचकर फिर पीछे मुड़ती है। चलते समय वह तरह-तरह की दानवी आवाजें निकालती है। जिनमें कभी घुड़की का आभास होता है कभी अट्टहास का। सहसा उसकी दृष्टि विश्वामित्र, राम

और लक्ष्मण पर पड़ती है। घोर पैशा-चिक स्वर करती हुई वह पार्श्वमंच ३ की ओर दौड़ती है।

तुलसी स्वर : चले जात मुनि दीन्हि देखाई।
वृन्द पाठ : चले जात मुनि दीन्हि देखाई।
तुलसी स्वर : सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।
वृन्द पाठ : सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।

ताड़का पार्श्व-रंगमंच के सामने आकर खड्ग को इधर-उधर हिलाती है और शरीर को घमंडपूर्ण ढंग से डुलाती है, मानो राम-लक्ष्मण को संघर्ष के लिए आह्वान करती हो।

विश्वा० : (**राम के पीछे से कंधे के पास मुख ले जाकर**) राम, उद्धार करो इस अभागिनी का !......अपने चरणों में शरण दो राम !

ताड़का : (**सरोष**) राम !—आगे बढ़ो राम !

राम उछलकर ताड़का के बराबर से फुर्ती के साथ रंगस्थली १ में होते हुए भीतरी रंगमंच पर पहुँच जाते हैं। वहाँ धनुष पर तीर चढ़ाते हैं। ताड़का उनका पीछा करते हुए, कर्कश स्वर में 'राम' 'राम' पुकारती हुई वहीं पहुँच जाती है। कुछ क्षणों के लिए दोनों एक-दूसरे के सामने मानो रुक जाते हैं। उस नीलाभ

प्रकाश में एक मानवेतर दृश्य, जिस पर प्रकाश केन्द्रित है। अन्यत्र अँधेरा।

तुलसी स्वर : एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।

राम धनुष खींचते हैं। एक बाण ताड़का की छाती पर लगता है। वह लड़खड़ाती है, उसके हाथ में से खड्ग गिर जाता है। इधर-उधर दिशाओं में लड़खड़ाने के बाद उसका शरीर राम की ही ओर इस तरह पलटता है कि उसका सिर राम के चरणों पर गिरता है। राम उसके सिर पर धनुष का सिरा टेकते हैं।

तुलसी और मंडली : (सस्वर)

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं।
जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं।
भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

पार्श्व और रंगस्थली १ तथा दीर्घ रंगस्थली पर इस बीच पुनः प्रकाश। लक्ष्मण भी इसी बीच दौड़कर राम के पास जाकर गले मिलते हैं। थोड़ी देर के लिए विश्वामित्र अकेले विचारमग्न।

विश्वा० : (स्वतः) पापिनी को एक ही बाण द्वारा अपने चरणों में सद्गति देनेवाले दीनदयालु

राम मेरे आश्रम के रक्षक हुए हैं । अहोभाग्य ! अहो लीलामय भगवान् !

उतरकर रंगस्थली १ पर राम की ओर चलते हैं। उधर राम और लक्ष्मण भीतरी रंगमंच से उतरकर विश्वामित्र की ओर आते हैं। राम विश्वामित्र के चरण छूते हैं।

विश्वा० : **(साधारण स्वर में)** राजकुमार, बंधुवर वसिष्ठ से निश्चय ही आपने अनुपम धनुर्विद्या प्राप्त की है।

राम : यदि उचित समझें तो हम दोनों को अपनी विद्या भी प्रदान करें मुनिवर !

तीनों बातें करते हुए दीर्घ रंगस्थली की ओर चलते हैं।

विश्वा० : राम, लोग कहेंगे कि विश्वामित्र ने—बिद्या निधि कहुँ बिद्या दीन्ही ।

राम : नहीं मुनिवर, आप आचार्य हैं । आश्रम के घने जंगलों में राक्षसों के छलछद्म से परिचित हैं। आपकी दी हुई शिक्षा हमारे अभियान के लिए नितांत आवश्यक है ।

तीनों दीर्घा से पार्श्वमंच ४ की ओर बढ़ते हैं।

विश्वा० : राजकुमार—जाते लाग न छुधा पिपासा ।
अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ।।

ऐसी विद्या राक्षसों के विनाश के अभियान में आप दोनों के काम आ सकेगी।...आश्रम आ ही पहुँचा। अभ्यास करते आपको देर नहीं लगेगी।......**(पार्श्वमंच ४ पर चढ़ते हुए)** आइये आपको वे सब आयुध, अस्त्र-शस्त्र सौंप दूँ जिनका उपयोग आप-जैसे क्षत्रियकुमारों को ही शोभा देता है। आइये।

विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का प्रवेश १० में होकर प्रस्थान। थोड़ी देर के लिए अँधेरा। तुलसीदास और मंडली का स्वर सुनाई पड़ता हैं।

तुलसी-स्वर : आयुध सर्व समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन, दीन्ह भगति हित जानि॥

और दूसरे दिन प्रात:काल— :

वृन्द पाठ : अरुन नयन उर बाहु बिसाला।
नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसे बर माथा।
रुचिर चाप सायक दुहु हाथा॥

तुलसी : प्रात कहा मुनि सन रघुराई।—

पार्श्वमंच ४ और ६ तथा रंगस्थली १ पर प्रकाश। राम और लक्ष्मण पार्श्वमंच ६ पर खड़े हैं। पार्श्वमंच ४ पर विश्वामित्र तथा अन्य मुनि और शिष्य होमकुंड के चारों तरफ बैठे हैं। होम के

लिए पूरी तैयारी है, समिधा, घृत-पात्र इत्यादि रखे हैं, किन्तु अग्नि प्रज्ज्वलित नहीं की गयी है।

राम : (विश्वामित्र से नतमस्तक हो)
निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई। मुनिवर, अब आप निर्भय होकर होम प्रारम्भ करें। आपने कृपा करके जो विद्या हमें प्रदान की है उसके योग्य आचरण का अवसर हमें दें।

एक मुनि : राजकुमार, आप दोनों—स्यामल गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्वचित चोरा॥—
आप राक्षसों का कैसे सामना करेंगे? वे तो—
घोर निसाचर निकट भट समर गनहिं नहिं काहु।

लक्ष्मण : मुनिवर, समर से मुख मोड़ना सिंह शावक नहीं जानते। और फिर हम आये ही इसीलिए हैं। देखें तो सही कैसे हैं निशाचर?

दूसरा मुनि : देखत जग्य निसाचर धावहिं। कराहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं। गाधितनय मन चिंता ब्यापी।

विश्वामित्र : हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी॥ (मुनियों से)
आश्रमवासियो, मैंने जो देखा है वह आपने नहीं देखा। संदेहमुक्त होकर यज्ञ प्रारंभ कीजिये। हमारे परित्राण की घड़ी आ पहुँची है।

विश्वामित्र और उनके साथी मुनि मंत्रोच्चारण करते हैं और अग्नि प्रज्ज्वलित करके आहुतियाँ डालना प्रारम्भ करते हैं।

राम और लक्ष्मण पार्श्वमंच ६ से उतर कर थोड़ी देर सतर्कता से इधर-उधर देखते हुए रंगस्थली १ पर घूमते हैं, और फिर राम पार्श्वमंच ६ पर और लक्ष्मण पार्श्वमंच ५ पर वीरासन में बैठ जाते हैं।

तुलसी-स्वर : होम करन लागे मुनि झारी।
आपु रहे मख कीं रखवारी ॥

क्रमशः पार्श्वमंच पर प्रकाश कम हो जाता है और भीतरी मंच २ पर बढ़ते प्रकाश में पुनः जंगल का दृश्य। झाड़ियों के पीछे से क्रमशः मुखौटों वाले अनेक राक्षस झाँकते हैं।

मंत्रोच्चारण जारी है। अँधेरे में से तुलसीदास का स्वर।

तुलसी-स्वर : सुनि मारीच निसाचर क्रोही।
लै सहाय धावा मुनिद्रोही ॥

भीतरी मंच पर राक्षसों की संख्या बढ़ जाती है। वे लोग रंगस्थली १ पर उतरना प्रारम्भ करते हैं। तभी हठात् निशाचर समूह को चीरते हुए दो

विशालकाय दानव—मारीच और सुबाहु घोर स्वर करते हुए आगे बढ़ते और पार्श्वमंच ४ की ओर दौड़ते हैं। राम फुरती के साथ दौड़कर पार्श्वमंच और मारीच सुबाहु के बीच धनुष ताने खड़े हो जाते हैं। लक्ष्मण भी अपने स्थान से कूदकर पीछे खड़ी राक्षसी-सेना को रोक देते हैं।

एक तरफ मारीच, दूसरी तरफ सुबाहु, बीच में राम रंगस्थली के आगे के भाग में युद्ध लड़ते हैं। युद्ध की विधि 'स्टाइ-लाज्ड' है, जैसे प्रायः परम्पराशील राम-लीला तथा अन्य प्रदर्शनों में होती है, यानी योद्धाओं का पद-विन्यास, आगे-पीछे बढ़ना, चाल और परिक्रमण ताल और लय के साथ होते हैं, स्वाभाविक युद्ध की-सी भगदड़ नहीं होती। मारीच और सुबाहु खड्गों से लड़ रहे हैं, राम के तीर कभी-कभी उन पर आघात करते हुए निकल जाते हैं। उधर लक्ष्मण राक्षसी सेना को अपने बाणों से रोके हुए हैं।

राम, मारीच और सुबाहु लड़ते-लड़ते दीर्घ रंगस्थली ७ पर आ जाते हैं। तीनों के तालयुक्त युद्ध के बीच कभी-कभी एक क्षण के लिए 'टेब्लो' की-सी स्थिरता जान पड़ती है। वस्तुतः इस

'नाट्यधर्मी' युद्ध के पूरे प्रभाव के लिए उपयुक्त क्रम से मृदंग या ढोल पर हलकी थाप दी जानी चाहिए।
थोड़ी देर बाद राम दीर्घा के किनारे पर आ जाते हैं और उनमें और राक्षसों में फासला बढ़ जाता है। तभी मारीच दहाड़कर दीर्घा के दूसरे सिरे से राम की ओर दौड़ता है। राम फुरती के साथ एक तीर का फर तोड़ते हैं, उसे धनुष पर चढ़ाकर धनुष को पूरा तानकर छोड़ते हैं। तीर लगते ही मारीच चीत्कार करता हुआ दीर्घा के बाहर दर्शकों के बीच दौड़ता हुआ चला जाता है।

तुलसी-स्वर : बिनु फर बान राम तेहि मारा।
सत जोजन गा सागरपारा।।

अब सुबाहु राम की ओर बढ़ता है। राम धनुष पर अग्निबाण चढ़ाते हैं।* सुबाहु ठिठक जाता है। राम उसकी ओर निशाना बाँधकर बढ़ते हैं। वह पीछे हटता जाता है और दीर्घा से रंग-स्थली और फिर भीतरी रंगमंच तक हटता जाता है। यह प्रक्रिया भी

*'स्टाइलाइज्ड' युद्धों में अकसर ऐसा होता है कि कोई अन्य व्यक्ति योद्धा को शस्त्र बाण इत्यादि पकड़ा दे। ऐसी प्रक्रिया की स्वाभाविकता का प्रश्न परम्पराशील नाट्य में नहीं उठता। इस स्थल पर भी राम को ऐसा बाण पकड़ा दिया जाय जिसमें अग्नि प्रज्वलित है। कोई मुनि ऐसा कर सकते हैं।

उसी तरह तालयुक्त होती है। भीतरी मंच पर पहुँच कर राम अग्निबाण छोड़ते हैं। कड़क के साथ ज्वाला उठने का आभास होता है और घोर चीत्कार के साथ सुबाहु गिर जाता है।
लक्ष्मण और राक्षसी सेना का संघर्ष तीव्रगति से होता है और अनेक राक्षस गिरते और बाकी भागते हैं। लक्ष्मण भीतरी रंगमंच पर राम के पास पहुँच जाते हैं और दोनों गले मिलते हैं।

तुलसी-स्वर : पावक सर सुबाहु पुनि मारा।
अनुज निसाचर कटकु सँघारा ॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी।
अस्तुति करहिं देवमुनि झारी ॥

भीतरी मंच पर राम और लक्ष्मण खड़े दीख पड़ते हैं और प्रकाश उन पर केन्द्रित है; अन्यत्र लगभग अँधेरा है, यद्यपि पार्श्वमंच ४ पर विश्वामित्र और मुनि-जन हाथ जोड़ वंदना की मुद्रा में खड़े दिखाई पड़ते हैं। उस समय मुनिवृंद तुलसी - मंडली और नेपथ्य से एक सामूहिक स्तुति सुनाई पड़ती है, जिस के बीच राम-लक्ष्मण की झाँकी के दर्शन होते हैं।

समूह-स्तुति

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ।।
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुल मनी ।।

प्रथम दृश्य समाप्त

सूत्रधार पीठिका ५ पर पुनः प्रकाश।
अन्यत्र अँधेरा।

तुलसीदास : राम अनंत अनंत गुन।
अमित कथा बिस्तार।।
सुनि आचरज न मानिहहिं।
जिन्हके बिमल विचार।।

श्रद्धालु दर्शको, श्रोताओ, मेरा निवेदन सुनें! अलौकिक है राम की कथा, अगणित हैं राम के चरित, नाना भाँति राम ने अवतार लिये, अपार और अनेक कोटि रामायण हुई। ज्ञानी लोग इस पर आश्चर्य नहीं करते, क्योंकि वे समझते हैं कि—

अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे ।
जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ।।

फिर भी भ्रमवश हम लोग इस सत्य को भूल जाते हैं ।

निज भ्रम नहिं समुझहि अग्यानी ।
प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ।।
जथा गगन घन पटल निहारी ।
झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ।।
चितव जो लोचन अँगुलि लाएँ ।
प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ ।।

वास्तव में तो शशि एक ही है, दो नहीं ।

वृन्द पाठ : सब कर परम प्रकासक जोई ।
राम अनादि अवधपति सोई ।।
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू ।
मायाधीस ग्यान गुन धामू ।।
जासु सत्यता तें जड़ माया ।
भास सत्य इव मोह सहाया ।।

तुलसीदास : रजत सीप महुँ भास जिमि ।
जथा भानु कर बारि ।।
जदपि मृषा तिहुँकाल सोइ ।
भ्रम न सकइ कोउ टारि ।।

रघुनाथ राम ही की कृपा से यह भ्रम दूर हो सकता है । इसलिए अपने को और आपको मैं

अकिंचन बार-बार याद दिलाना चाहता हूँ, नहीं तो इन अद्‌भुत लीला रूपी फलों का छिलका ही हाथ लगेगा रस नहीं ।

विश्वामित्र जी भी उसी रस के प्यासे थे । और कैसे भगवान् लीलाओं का ताँता बाँधे रहें यही जतन करते थे । विश्वामित्रजी के आश्रम में रघुराज राम कुछ दिन और रहे और मुनिवर से अनेक पुरानी कथाएँ सुनते रहे । एक दिन विश्वामित्र जी ने कहा—एक वर्तमान चरित आपको दिखायें । मिथिला के राजा जनक धनुष यज्ञ कर रहे हैं । वहाँ चलें ।

झाँकी १

भीतरी रंगमंच २ पर हलका नीला प्रकाश । एक ऐसा जंगल जहाँ हरेक वस्तु निश्चल और निष्प्राण जान पड़ती है । विश्वामित्र के पीछे-पीछे राम और लक्ष्मण का प्रवेश । कोने में एक सुनसान और निर्जीव-सा आश्रम ।

तुलसी-स्वर : धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा ।
हरषि चले मुनिवर के साथा ।।
आश्रम एक दीख मग माहीं—

लक्ष्मण : आचार्य यह कैसा विचित्र आश्रम है ? न खग-मृग, न जीव-जंतु । केवल एक ठिठका-हुआ-सा मौन !

विश्वा० : राजकुमार, सचमुच ही यह आश्रम किसी की प्रतीक्षा में मौन होकर जड़वत् पड़ा है ।

राम कुछ दूर जाकर एक शिला के पास खड़े हो जाते हैं और उसे ध्यान से देखते हैं ।

लक्ष्मण : किसकी प्रतीक्षा में ?

विश्वा० : (**किंचित् हँसकर**) किसकी प्रतीक्षा में !

राम : (**दूर ही से**) महामुनि, यह शिला-मूर्ति किसकी है ? किस स्त्री का स्वरूप है ?

विश्वा० : मुझसे क्यों पूछते हो राम ? क्या तुम्हें ज्ञात नहीं रघुनाथ कि कौन है यह ? और यहाँ क्यों पड़ी है ?

लक्ष्मण : मुझे तो बताइए मुनिवर !

विश्वा० : गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या, जिसके साथ इन्द्र ने अपावन व्यवहार किया । पति ने दोनों को शाप दिया । इन्द्र को भयंकर रोग ने ग्रस लिया, अहल्या पत्थर बन गयी ।(**राम को पुकार-**

कर) हे राम उद्धार करो इस नारी का, शेष करो उसकी कालकालांतर की प्रतीक्षा का—

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।

जिस समय विश्वामित्र बोल रहे हैं धीरे-धीरे भीतरी रंगमंच के उस हिस्से पर भी अँधेरा फैल जाता है जहाँ लक्ष्मण और वे खड़े हैं। केवल उसी स्थल पर प्रकाश केन्द्रित हो जाता है जहाँ राम अहल्या की प्रस्तर-प्रतिमा के पास खड़े हैं। सर्वत्र अंधकार के बीच एक आलोक-पुंज। अनिर्वचनीय सौम्य मुस्कान के साथ राम अपना दाहिना चरण उठाते हैं और प्रतिमा के मस्तक पर थोड़ी देर रखकर हटा लेते हैं। चरण हटते ही अहल्या की मूर्ति में थोड़ी सिहरन के बाद अहल्या हाथ जोड़े हुए श्रद्धावनत खड़ी हो जाती है। इस प्रक्रिया के साथ-साथ तुलसी का वृंद सहित स्वर।

तुलसी-स्वर (वृंदसहित) :

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही।।

अहल्या : मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावनरिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भवभय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई॥
मुनि श्राप जो दीन्हा अतिभल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न माँगउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥
जेहिं पद सुरसरिता परमपुनीता प्रगट भई सिवसीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥

प्रकाश लुप्त होता है और ऐसा जान पड़ता है मानो अहल्या गगन की ओर उठ रही हो।

वृन्दस्वर : एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार-बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी॥

भीतरी रंगमंच पर पूर्ण अँधेरा। साथ ही सूत्रधार-पीठिका पर प्रकाश।

झाँकी एक समाप्त

तुलसी० : अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल॥
हे श्रोताओ, हे दर्शको !

वृंद सहित : अगुन अखंड अनंत अनादी।
जेहि चिंतहिं परमारथ बादी॥

नेति नेति जेहि बेद निरूपा।
निजानंद निरुपाधि अनूपा ।।
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना।
उपजहिं जासु अंसतें नाना ।।
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई।
भगत हेतु लीलातनु गहई ।।

अहल्या का उद्धार करने के बाद राम, विश्वामित्र, लक्ष्मण तथा आश्रमवासी मुनियों के साथ आगे चले। गंगा तट पर पहुँचे। स्नान किया। दान दिये। फिर चलते-चलते विदेह नगरी पहुँचे और उसकी शोभा लखते हुए नगरी के बाहर एक अमराई में ठहरने का संकल्प किया।

द्वितीय दृश्य

पार्श्वमंच ४ और ६ पर उजाला। विश्वामित्र एवं मुनियों और बटुकों के साथ राम और लक्ष्मण उस स्थली पर अपना-अपना सामान फैला रहे हैं। राम लक्ष्मण धनुष-तरकश इत्यादि रख रहे हैं, मुनिगण और बटुक मृगछाल,

कमंडुल इत्यादि। बीच-बीच में बातें हो रही हैं।

विश्वा० : राजा जनक की नगरी पसंद आई, राजकुमार ?

राम : अत्यंत रमणीक नगरी है मुनिवर !

एक बटुक : कितनी सुंदर बाटिकाएँ हैं यहाँ ?—गुंजत मंजु मत्तरस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा।

दूसरा : बरन-बरन बिकसे बनजाता। बिबिध समीर सदा सुखदाता।।

लक्ष्मण : नगर में हाट बाजार भी तो आकर्षक हैं।

एक मुनि : ठीक कहा राजकुमार। जहाँ जाइ मन तहँई लोभाई।

दूसरा मुनि : चारु बजारु विचित्र अँवारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी।।

एक बटुक : मंगलमय मंदिर सब केरें। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें।।

एक मुनि : यहाँ के नगरवासी भी बड़े सज्जन जान पड़े। —पुर नर नारि सुभग सुचि संता।

दूसरा मुनि : धरम सील ज्ञानी गुनवंता।

एक बटुक : और राजा जनक का निवास ?

दूसरा बटुक : क्या कहने ! ऐसा अनूप है वह कि बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू।

एक बटुक : होत चकित चित कोट बिलोकी । सकल भुवन सोभा जनु रोकी ॥

राम : एक और भी तो महल था शोभामय !

लक्ष्मण : तात, वह राजकुमारी सीता का सुन्दर सदन था ।—धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति !

एक मुनि : (**विश्वामित्र से**) आचार्य, कई अनुचरों और सैनिकों के साथ कोई इधर आ रहे हैं ।

सचिवों, सेवकों, विप्रों के साथ राजा जनक का प्रवेश ।

विश्वा० : अरे राजा जनक ! आइए !

जनक : (**बैठते हुए**) मेरा अहोभाग्य मुनिवर कि आप इस शुभ अवसर पर मेरी नगरी में पधारे ।

विश्वा० : कुशल से तो हैं राजन् ?

जनक : आपकी अनुकम्पा है मुनिवर ! आप देख ही रहे हैं कि धनुष-यज्ञ के लिए देश-देश से अनेक नरेश आये हुए हैं । उन्हीं की व्यवस्था में लगा हुआ था कि आपके शुभागमन का समाचार मिला ।

विश्वा० : हाँ राजन् वह तो हमने देखा—

पुर बाहेर सर सरित समीपा । उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा ॥

जनक : आपके पधारने की सूचना मिलते ही मैंने आपके लिए तो नगर के भीतर ही ठहरने की व्यवस्था कर दी है।

विश्वा० : हमारे लिए तो यह अमराई ही भली है राजन्, लेकिन—(राम और लक्ष्मण से) इधर तो आओ, वत्स।

जनक : (दोनों की ओर एकटक देखते हुए)…मैं चकित हूँ, मुनिवर ! आज्ञा दें तो एक प्रश्न पूछूँ।

विश्वा० : पूछिए।

जनक : कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक।
मुनिकुल तिलक कि नृप कुलपालक ।।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।
उभय बेष धरि की सोइ आवा ।।

मुनिवर बात यह है कि—
सहज विराग रूप मनु मोरा।
थकित होत जिमि चन्द चकोरा ।।
ताते प्रभु पूछउँ सति भाऊ।
कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ।।
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा ।।

विश्वा० : (तनिक हँसकर) राजन् ! वचन तुम्हार न होइ अलीका। वास्तव में ये दोनों सब के प्राणप्रिय हैं,

रघुकुल-मुनि राजा दशरथ के पुत्र हैं और उन्होंने मेरे हित के लिए इन्हें मेरे साथ भेजा है। राम लखन दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम। मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम ॥

जनक : मुनिवर, इन्हें देखकर मेरा शरीर पुलकित है और मन उत्साहपूर्ण। ब्रह्म जीव के समान इन दोनों की एक-दूसरे के प्रति पावन प्रीति है। सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनँदहू के आनँददाता।……महामुनि मेरा निवेदन स्वीकार करें। इन दोनों राजपुत्रों के साथ आप लोग सभी नगर के अंदर उस सदन में चलें जहाँ मैंने आपके निवास की व्यवस्था कर रखी है।

विश्वा० : राजन् आपकी विनयशीलता आपकी गरिमा के अनुकूल ही है। आपके अनुरोध को टालना सम्भव नहीं।……आप आगे चलें। हम लोग शीघ्र ही पहुँचते हैं। **(जनक के साथ-साथ कुछ दूर जाते हैं।)**

राम : **(लक्ष्मण की ओर देखते हुए)** लक्ष्मण !

लक्ष्मण : आज्ञा तात !

राम : मन-ही-मन मुस्करा कैसे रहे हो ! कोई बात है ?

लक्ष्मण : कुछ नहीं तात !

राम : सकुचाते हो अनुज !

विश्वामित्र जनक को पहुँचाकर आते हैं।

विश्वा० : आप लोग चलने की तैयारी करें। दिन ढलने से पूर्व एक प्रहर रहते हम लोग नये निवास-स्थल पहुँच जायँ तो ठीक होगा।

राम : नाथ, एक विनती है।

विश्वा० : कहो, राम !

राम : नाथ लखनु पुर देखन चहहीं।
प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं।
नगर देखाइ तुरत लै आवौं ॥

विश्वा० : अपने से छोटों के प्रति नीति निब्राहना तुम्हीं जानते हो राम। धरम सेतु पालक तुम्ह ताता।
प्रेम बिबस सेवक सुखदाता ॥
जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ ॥

विश्वामित्र के चरण छूकर दोनों भाई पार्श्वमंच से रंगस्थली १ पर आते हैं। मुनि लोग सामग्री सँवारने में लग जाते हैं। इधर रंगस्थली १ और दीर्घा पर प्रकाश तीव्र हो जाता है और पार्श्वमंच ३ पर भी। राम और लक्ष्मण रंगस्थली

के एक सिरे से चलकर पार्श्वमंच ३ के नीचे घूमते हुए पार्श्वमंच ५—सूत्रधार पीठिका के निकट से दीर्घा में उतरते हैं और समग्र दीर्घा के किनारे-किनारे घूमते हुए पार्श्वमंच ६ के पास रंगस्थली पर चढ़कर पार्श्वमंच ५ तक वापस आता है। यही नगर-भ्रमण है जिसके दौरान नगरवासी, बच्चे, प्रौढ़, स्त्रियाँ, राम-लक्ष्मण को देखने के लिए रास्ते के दोनों ओर जगह-जगह इस तरह आकर बैठ जाते हैं कि वीथियों और राजपथों का आभास होता है। पार्श्वमंच ३ पर कुछ स्त्रियाँ खड़ी हैं और आपस में वार्तालाप करती हैं। कुछ नगरवासी रंगस्थली के दोनों ओर और कुछ दीर्घा के पार्श्वों में बैठ जाते हैं। दो-चार बच्चे राम-लक्ष्मण के दोनों ओर और पीछे चलने लगते हैं और जिज्ञासावश उनकी ओर देखने लगते हैं। सभी की टकटकी इन दोनों पर लगी है और सभी एक-दूसरे से उनके बारे में बातचीत करते-से जान पड़ते हैं। बच्चे कभी-कभी उँगली से इशारा करके राम-लक्ष्मण को विभिन्न स्थान बताते हैं। अंत में दीर्घा से रंगस्थली पर लौटते समय बच्चे उन्हें रंगस्थली के बीच धनुष - यज्ञशाला के विभिन्न अंग

दिखाने का अभिनय करते हैं और राम भी लक्ष्मण को बताते हैं। यह सब मौन संकेतमय अभिनय है। किन्तु स्त्रियों का वार्तालाप पार्श्वमंच ३ पर स्पष्ट सुनाई पड़ता है। अन्य नगरवासियों के बोलने का मात्र आभास-सा होता है, मानो एक जनसंकुल नगर का स्वर सुन पड़ता हो।

तुलसी : मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता।
चले लोक लोचन सुखदाता॥

वृन्दपाठ : पीत बसन परिकर कटि माथा।
चारु चाप सर सोहत हाथा॥

कुछ बालक राम-लक्ष्मण के पीछे लग जाते हैं।

तुलसी : बालक वृन्द देखि अति सोभा।
लगे संग लोचन मनु लोभा॥

वृन्द : तनु अनुहरत सुचंदन खोरी।
स्यामल गौर मनोहर जोरी॥

इस बीच कुछ नगरवासी रंगस्थली १ और दीर्घा के दोनों ओर बैठ जाते हैं और उत्सुकता से राम-लक्ष्मण को देखने लगते हैं।

तुलसी : देखन नगरु भूपसुत आए।
समाचार पुरबासिन्ह पाए॥

धाए धाम काम सब त्यागी ।
मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ॥

वृन्द : निरखि सहज सुंदर दोउ भाई ।
होहिं सुखी लोचन फल पाई ॥

कुछ युवती स्त्रियाँ पार्श्वमंच ३ पर आकर ऐसे देखती हैं मानो झरोखों से झाँकती हों । प्रकाश उन लोगों पर भी पड़ता है और भ्रमण करते हुए राम-लक्ष्मण का भी साथ देता है ।

तुलसी : जुबती भवन झरोखन्हि लागीं ।
निरखहिं रामरूप अनुरागी ॥
कहहिं परसपर बचन सप्रीती ।

युवती : सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती ॥
कहहु सखी अस को तनुधारी ।
जो न मोह यह रूप निहारी ॥

युवती २ : जो मैं सुना सुनहु सयानी ।
ए दोऊ दसरथ के ढोटा ।
बाल मरालन्हि के मल जोटा ॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे ।
जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे ॥

युवती १ : अच्छा सखि इन दोनों में वह कौन है—
स्याम गात कल कंज बिलोचन ?

युवती २ : कौसल्यासुत सो सुख खानी ।
नामु रामु धनु सायक पानी ॥

युवती ३ : और वह—गौर किसोर बेषु बर काछें ?

युवती २ : लछिमनु नामु राम लघु भ्राता ।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ।।

युवती १ : सखि, राम की छवि देखकर मेरे मन में एक विचार आता है ।

युवती ३ : क्या सखि ?

युवती १ : जोगु जानकिहिं यह बर अहहू ।

युवती ४ : बात तो ठीक है ।—
जौं सखि इन्हहिं देख नर नाहू ।
पन परिहरि हठि करइ बिबाहू ।।

युवती २ : वह सब भूल जाओ सखि । राजा जनक ने तो इन्हें देख लिया है । मुनि-समेत इनका सादर सत्कार भी किया है ।—
सखि परन्तु पनु राउ न तजई ।
बिधिबस हठि अबिबेकहि भजई ।।

युवती १ : यदि विधाता सब की सुनता है, उचित फल देने वाला है—तो जानकिहि मिलिहि बरएहू ।
नाहिन आलि इहा संदेहू ।

युवती ३ : जौं बिधिबस असबनै सँजोगू ।
तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू ।।

युवती १ : सखि हमरें आरति अति तातें ।
कबहुँक ए आवहिं एहि नाते ।।

युवती ४ : पर सखि शंकर का धनुष तो बहुत कठोर है ।

कहाँ वह धनुष और कहाँ—ए स्यामल मृदुगात किसोरा !

युवती १ : यह तो बड़ी असमंजस की बात है, सखी !

युवती २ : जो मैंने सुना है वह तो सुनो ।

सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं ।
बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं ।
परसि जासु पद पंकज धूरी ।
तरी अहल्या कृत अघ भूरी ।
सो कि रहिहि बिनु सिव धनु तोरे ।।
यह प्रतीति परिहरिअ न भोरे ।

युवती ४ : तेरी बात सुनकर मन प्रसन्न हो गया । सच तो यह है कि—

जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी ।
तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी ।।

युवतियाँ सुमन बिखेरकर चली जाती हैं । दर्शक लोगों का भी क्रमशः प्रस्थान । इस बीच राम और लक्ष्मण दीर्घा से रंगस्थली की ओर मुड़ते हैं, जहाँ बालक उन्हें धनुष यज्ञ के लिए बनाई हुई भूमि-वेदी, बैठने के स्थान इत्यादि संकेत करके दिखाते हैं । कभी-कभी इस बहाने दोनों के वस्त्र छूने-पकड़ने का आनन्द उठाते हैं ।

तुलसी : पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई।
जहाँ धनुमख हित भूमि बनाई।।
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना।
सादर प्रभुहि देखावहिं रचना।।

बालक १ : वह देखिये धनुष-यज्ञ भूमि पर विस्तृत विमल वेदिका। (**राम लक्ष्मण उत्सुकता से देखते हैं।**)

बालक २ : और वह विशाल कंचन मंच।

बालक ३ : दूसरी ओर—उधर देखिये—राजाओं के बैठने का स्थान।

बालक ४ : उसके पीछे चारों ओर ऊपर वाला मंच।

बालक १ : नगरवासी उधर ऊँचे वाले स्थान पर बैठेंगे।

बालक २ : रंगबिरंगा वह धवल धाम देख रहे हैं? वहाँ नारियाँ बैठेंगी?

राम : बहुत सुंदर है। देखा लक्ष्मण? कितनी रमणीक रचना है यज्ञ भूमि की?

लक्ष्मण : तात, प्रत्येक मंच भव्य है, चित्ताकर्षक है।
(**दोनों अचरज और सराहनापूर्ण भंगिमा से देखते हैं।**)

तुलसी : धन्य हो प्रभु।—

लव निमेष महुँ भुवन निकाया।
रचइ जासु अनुसासन माया।।
भगतिहेतु सोई दीनदयाला।
चितवत चकित धनुष मख साला।।

बालक १ : हम तो आपको देखकर पुलकित हैं राजकुमार।

बालक ३ : राजकुमार, आपका वस्त्र छू लूँ ?

राम : (अपना दुकूल बढ़ाकर) यह लो ! (बालक उसे छूकर प्रसन्न होता है।)

बालक २ : और आपका चरण भी छू लूँ ?

राम : उसकी क्या आवश्यकता है ?

बालक २ : यों ही। (झट से राम का एक चरण छू लेता है।) अरे ! (हँसता है।)

लक्ष्मण : क्या बात है ?

बालक ४ : इसे भय था कि राजकुमार का चरण छूते ही कहीं यह आकाश में उड़ न जाय !

बालक २ : जैसे सुनते हैं कि इनका चरण छूते ही अहल्या नाम की पत्थर की मूर्ति आकाश में उड़ गई थी ! है न ?

राम : (हँसते हुए) अच्छा भई, अब तो चलना होगा। अधिक विलंब होने से मुनि विश्वामित्र क्रोधित होंगे।

बालक १ : आपको उनसे डर लगता है ?

राम : हमारे गुरु जो हैं। लक्ष्मण शीघ्र चलो !

राम-लक्ष्मण पार्श्वमंच और प्रवेश १० की ओर प्रस्थान करते हैं। बालक वृंद तनिक सुस्त होकर प्रवेश ६ की ओर चल देते हैं। रंगस्थली पर अँधेरा, और सूत्रधार पीठिका पर उजाला।

तुलसी : अनोखी है तुम्हारी लीला, राम !—

जासु त्रास डर कहुँ डर होई ।
भजन प्रभाउ देखावत सोई ।।

वृन्द : सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ।।

तुलसी : रात बीत चली । मुनिवर सोने को चले । तब दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे !

वृन्द : जिन्ह के चरन सरोरुह लागी ।
करत बिबिध जप जोग बिरागी ।।
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते ।
गुरु पद कमल पलोटत प्रीते ।।

तुलसी : अति विचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान ।
जे मातिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन ।।

अँधेरा और विराम ।

द्वितीय दृश्य समाप्त

तृतीय दृश्य

सूत्रधार-पीठिका पर प्रकाश। मंच के अन्य भागों पर भी मंद प्रकाश। भीतरी रंगमंच के बीच छोटा-सा गिरिजा मंदिर। दीवारें नहीं हैं, स्तंभों पर स्थित है और देवी की प्रतिमा दीखती है। रंगस्थली के उस कोने पर जहाँ पार्श्वमंच ३ और भीतरी रंगमंच एक-दूसरे के बहुत निकट हैं, एक छोटा-सा लता-मंडप है जिसमें प्रवेश करने का द्वार दीखता है और बाहर निकलने का द्वार दूसरी ओर है। पार्श्वमंच ४ से पार्श्वमंच ३ तक रंगस्थली पर सांकेतिक तौर पर कुछ फुलवारी की सामग्री। गिरिजा - मंदिर के निकट भी कुछ झाड़ियों, वृक्षों का सांकेतिक प्रदर्शन। रंगस्थली के बीच भीतरी रंगमंच से लगा एक सरोवर जिसका आभास आयताकार एवं गमला की श्रेणी से दिया जा सकता है।

तुलसी : समय जानि गुर आयसु पाई ।
लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।
भूप बागु बर देखेउ जाई ।
जहाँ बसंत रितु रही लोभाई ।।

राम और लक्ष्मण पार्श्वमंच ३ पर आकर वहाँ खड़े होकर वाटिका की शोभा निहारते हैं ।

लक्ष्मण : तात बड़ी सुंदर वाटिका है यह ।—
लागे विटप मनोहर नाना ।
बरन बरन बर बेलि बिताना ।।

राम : हाँ लक्ष्मण ! राजा जनक ने सुचारु ढंग से यह रमणीक वाटिका बनवाई है ।

लक्ष्मण : वह देखिये तात !—
मध्य बाग सरु सोह सुहावा ।
मनि सोपान बिचित्र बनावा ।।

तुलसी वृन्द सहित : बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत ।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत ।।

लक्ष्मण : तात चलिए कुछ फूल चुनें ।

राम : तुमने प्रवेश करते समय मालियों से पूछ लिया था न ?

लक्ष्मण : जी हाँ, मुनिवर के पूजन के लिए फूल चाहिए, ऐसा कहा था ।

राम : तब ठीक है ।

दोनों पार्श्व मंच ३ से रंगस्थली पर उतरकर फूल चुनने का अभिनय करते है। भीतरी रंगमंच पर विशेष प्रकाश। युवतियों के वृन्दगीत का दूरस्थ स्वर और सखियों समेत सीता का १० से भीतरी रंगमंच पर प्रवेश। एक सखी थाल में पूजन-सामग्री लिये है जिसे गौरी की मूर्ति के आगे रखकर हाथ जोड़ती है।

तुलसी : तेहि अवसर सीता तहँ आई।
गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
संग सखीं सब सुभग सयानी।
गावहिं गीत मनोहर बानी॥

सीता और सखियाँ पूजन की मुद्रा में।

तुलसी : पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा।
निज अनुरूप सुभग बरु माँगा॥

धूप-दीप इत्यादि जलाती हैं। आँख मूँदकर ध्यानमग्न खड़ी हैं। तभी एक सखी पार्श्वमंच ४ पर होकर पार्श्व-मंच ६ पर से छिपे-छिपे राम और लक्ष्मण को फूल चुनते देखती हैं।

तुलसी : एक सखी सिय संगु बिहाई।
गई रही देखन फुलवाई।
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई।

वह सखी दोनों भाइयों को देखकर विह्वल उसी रास्ते से होकर पुनः गिरिजा मंदिर पहुँचती है।

तुलसी : प्रेम बिबस सीता पहँ आई।

सीता और सखियाँ उसे उस दशा में देखकर उत्सुकता से उसे घेरकर उससे प्रश्न करती जान पड़ती हैं।

तुलसी : तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।
कहु कारन निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन।

सूत्रधार-पीठिका पर अंधकार। कुछ देर कई युवती-स्वर सुनाई पड़ते हैं। तब सीता बोलती हैं।

सखी २ : बता न सखी, किसलिए फूली नहीं समाती है तू?

सखी १ : (मुस्कराती हुई सीता से कहती है।) राजकुमारी —देखन बागु कुँअर दुइ आए।

सखी २ : अच्छा? कैसे हैं वे?

सखी १ : बय किसोर सब भाँति सुहाए।

सखी २ : और भी बता सखी।

सखी १ : स्याम गौर किमि कहौं बखानी! राजकुमारी क्या कहूँ! मेरी तो—
गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

सीता : सखी। (मौन उत्कंठा।)

सखी २ : राजकुमारी की उत्कंठा पूरी नहीं हुई। कुछ और बता सखी।

सखी ३ : मैं बताऊँ। आली ये तो वे ही राजपुत्र हैं जो कल मुनि विश्वामित्र के साथ आये हैं।

सखी ४ : अच्छा तो ये वही हैं—

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी।
कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥

सखी ३ : हाँ वही—बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू।
अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥

सीता उत्कंठा और अनुराग से अभिभूत हो दर्शन की इच्छा से आकुल होती जान पड़ती हैं।

तुलसी स्वर : तासु बचन अति सियहि सोहाने।
दरस लागि लोचन अकुलाने॥

सखी १ : तब तो राजकुमारी आप भी उन्हें देखें। आइये न!

सीता : किधर सखी ?

सखी १ : आइये मैं आगे चलती हूँ।

सब भीतरी रंगस्थली से पार्श्वमंच ४ पर होकर पार्श्वमंच ६ से रंगस्थली पर उतरती हैं।

तुलसी स्वर : चली अग्र करि प्रिय सखि सोई।
प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥

कौन जानता है प्रकृति और पुरुष की उस पुरातन प्रीति को जो युगों की अवधि पार करके बारंबार विकसती है।

सखी २ : सखी, राजकुमारी को तो देखो !—
चकित बिलोकति सकल दिसि,
जनु सिसु मृगी सभीत।

सब हँसती हैं। उनके उतरने पर, कंकणों की ध्वनि।

लक्ष्मण : तात ! बड़े सुन्दर फूल हैं। (**चुनते हुए**)—

राम : फूल— (**कंकण ध्वनि तीव्र। राम की दृष्टि उधर जाती है।**)

लक्ष्मण : (**उसी तरह फूल चुनते हुए**) आप कुछ कह रहे थे, तात ?

राम : लक्ष्मण, तुमने सुना ?

लक्ष्मण : (**राम की ओर देखते हुए**) क्या ?

राम : कंकन किंकिनि नूपुर धुनि।—

लक्ष्मण : (**राम की दृष्टि का अनुसरण करते हुए**) जी !... उन चरण कमलों में कंकनों की ध्वनि विशेष मधुर है।

राम : मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।

राम की टकटकी लग जाती है। कुछ समय के लिए राम अनुराग की मूर्ति

बने ठगे-से देखते रह जाते हैं। प्रकाश उन पर केन्द्रित है और सीता पर भी यद्यपि सीता उन्हें देख नहीं पाई हैं— लता मंडप की ओट के कारण। उस आह्लाद-पूर्ण मौन क्षण में तुलसी की तरल वाणी—

तुलसी स्वर : अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल।
मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥

वृन्द सहित : देखि सीय सोभा सुखु पावा।
हृदय सराहत बचनु न आवा॥

तुलसी स्वर : जनु बिरंचि सब निज निपुनाई।
बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥
सुंदरता कहुँ सुंदर करई।
छबि गृहँ दीपसिखा जनु बरई॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी।
केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी॥

लक्ष्मण : तात के लिए विमोहक और मेरे लिए वंदनीय पदपंकज धारिणी यह कौन सुंदरी हैं ?

राम : लक्ष्मण यह वही जनकसिया राजकुमारी है जिसके कारण धनुषयज्ञ हो रहा है। जान पड़ता है—
पूजन गौरि सखी लै आई।

करत प्रकासु फिरइ फुलवाई ॥ (**मानो खोये-से**)

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा ।
सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥

लक्ष्मण : (**मंदस्मिति**) हूँऽ ।···पर बात इतनी ही तो नहीं जान पड़ती, तात !

राम : (**सोच्छवास**) सो सबु कारन जान बिधाता ।
फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता ॥

लक्ष्मण : समझा, समझा !···मुझे तो आपका इस तरह ठगे-से रह जाना ही बहुत भला लगता है, तात !

राम : लक्ष्मण, मैं असमंजस में हूँ ।

लक्ष्मण : स्वाभाविक ही है तात !

राम : वह बात नहीं । सुनो !

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ ।
मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी ।
जेंहि सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥

लक्ष्मण : लेकिन विदेहकुमारी भी तो शोभा की सीमा ही जान पड़ती हैं ।

राम : लक्ष्मण ! यह मुझे क्या हो रहा है ? क्या मैं गुरुओं द्वारा दिखाये पथ से विचलित हो रहा हूँ ?

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी ।
नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ।।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं ।
ते नरबर थोरे जग माहीं ।।

लक्ष्मण : तात, इस लता-गुल्म में कुछ निराले ही फूल हैं । कुछ इनमें से भी चुनें !

दोनों लता मंडप में प्रवेश कर वहाँ फूल चुनने लगते हैं ।

सखी १ : सखी देखो न !···

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता ।
कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता ।।

सखी ३ : तो बता क्यों नहीं देती बेचारी को ?···तू ही तो उन्हें दिखाने राजकुमारी को यहाँ लाई है ।

सखी १ : इसलिए नहीं बताती कि राजकुमारी की यह मुद्रा भी तो मनमोहिनी है—

जहँ बिलोक मृगसाबक नैनी ।
जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ।।

सखी ४ : मुझे दीख गये । राजकुमारी तनिक इधर आओ !···यहाँ से देखो उस लता की ओट में··· वे रहे दोनों स्यामल गौर किसोर सुहाए ।

सीता आतुर हो वहीं से देखने लगती है ।

सखी १ : सखी, कैसी निराली है राजकुमारी की यह भंगिमा इन दोनों को देखते हुए—

देखि रूप लोचन ललचाने।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने।।
थके नयन रघुपति छवि देखें।
पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें।।

सखी २ : अधिक सनेहँ देह भै भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।

सखी ३ : देखो, देखो राजकुमारी के नेत्र !

सखी १ : सखि, मुझे तो लगता है कि—

सखी २ : क्या ?

सखी १ : लोचन मग रामहि उर आनी।
दीन्हे पलक कपाट सयानी।।

सीता : सखी ! (**संकोचवश मौन**)

सखी ४ : राजकुमारी तो—
कहि न सकहि कछु मन सकुचानी।

सखी ३ : कौन अचरज की बात है ?···देखो न लता-मंडप से बाहर आने पर कैसे अपूर्व छविमान लग रहे हैं दोनों !

निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलदपटल बिलगाई।।

इसके बाद सखियों में आपस में जो संवाद होता है उसमें एक के बाद एक सखी चौपाइयों की अर्धालियाँ बोलती

हैं, स्पष्ट, लेकिन क्रमशः त्वरित गति से, मानो कई शिल्पी जल्दी-जल्दी और मुस्तैदी से, देखते ही देखते कोई अत्यन्त सुंदर मूर्ति गढ़ते हैं और एक के बाद एक छैनी की ध्वनि उस निर्माण की गति का प्रतीक हो।

सखी १ : सोभासीवँ सुभग दोउ वीरा।
नील पीत जलजाभ सरीरा ॥

सखी २ : मोरपंख सिर सोहत नीके।
गुच्छ बीच बिच कुसुमकली के ॥

सखी ३ : भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए।
श्रवन सुभग भूषन छबि छाए ॥

सखी ४ : बिकट भृकुटि कच घूघरवारे।
नव सरोज लोचन रतनारे ॥

सखी १ : चारु चिबुक नासिका कपोला।
हासबिलास लेत मनु मोला ॥

सखी २ : मुखछवि कहि न जाइ मोहि पाहीं।
जो बिलोक बहु काम लजाहीं ॥

सखी ३ : उर मनिमाल कंबु कल ग्रीवा।
काम कलभ कर भुज बलसींवा ॥

सखी ४ : सुमन समेत वाम कर दोना।
साँवर कुँअर सखी सुठि लोना ॥

वृन्दस्वर : केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा शील निधान ॥
देखि भानुकुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान ॥

तुलसी स्वर : धरि धीरज एक आलि सयानी ।
सीता सन बोली गहिपानी ॥

सखी १ : राजकुमारी, (हाथ पकड़ कर)
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू ।
भूपकिसोर देखि किन लेहू ॥

सीता सकुचती-सी, उत्कंठित-सी उस ओर देखती हैं ।

तुलसी स्वर : सकुचि सीय तब नयन उघारे ।
सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे ॥

सीता देखती ही रह जाती हैं । मधुर वाद्यों और चिड़ियों की चहचहाहट— अत्यंत मंद पर अनुराग की अद्भुत घड़ी का अनिर्वचनीय स्वर । फिर मौन क्योंकि इस दिव्य अनुराग की चरमाभिव्यक्ति केवल मौन ही तो है । हठात् सीता तरल, खोये-से कण्ठ से

सीता : सखियो, मुझे न जाने कैसा लग रहा है ।
सखी २ : (चिन्तित) क्या हुआ, क्या हुआ राजकुमारी ?
सखी ३ : चित्त तो ठीक है ?
सीता : चित्त (सोच्छ्वास) चित्त में आह्लाद भी है और क्षोभ भी, सखी ।
सखी ४ : क्षोभ, क्यों ? क्या,
नख सिख देखि राम कै सोभा ?

सीता : सुमिरि पितापन मनु अति छोभा ।
(**शिथिल-सी**) और क्या कहूँ सखी !……

सखी २ : सखियो, राजकुमारी को यों परबस देखकर मुझे भय लगता है !…इन्हें अब ले चलना चाहिए ।

सीता का दूसरा हाथ पकड़ कर उन्हें ले जाने की चेष्टा करती है। सीता अटकती-सी, उलझती-सी चलती तो हैं पर—

सखी १ : अरी एक पल ठहर । मुझे एक बात तो कह लेने दे ।

सखी २ : किससे ?

सखी १ : किसी से भी ।

सखी ३ : क्या बात ?

सखी १ : (**ऊँचे स्वर में**) पुनि आउव एहि बेरियाँ काली ।
(**हँसती है**) चलिए राजकुमारी ।

सीता : (**सकुच कर**) सखियो, देरी होने पर माँ नाराज होंगी…।

सखी ४ : सखी, गूढ़गिरा सुनि सिय सकुचानी ।

सखी ३ : कभी सकुचाती हैं और कभी—

सखी ४ : धरि बड़ि धीर रामु उर आने ।

सखी २ : धीरज जाते भी तो देर नहीं लगती ।
फिरी अपनपउ पितुबस जाने ॥

सखी ३ : जानि कठिन सिवचाप बिसूरति ।

सखी ४ : चली राखि उर स्यामल मूरति ।।

सखी १ : ये सभी प्रीत के लक्षण हैं सखी । देखो चलते चलते भी हमारी राजकुमारी किधर देखती हैं।

सीता : सखियो, ये मृग और पंछी कितने सुंदर हैं; और, और वे वृक्ष ! (दृष्टि कहीं और है।)

सखी १ : देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि।।

सीता और सखियाँ पार्श्वमंच ६ और ४ से होते हुए भीतरी रंगमंच में गिरिजा मंदिर की ओर बढ़ती हैं।

राम : लक्ष्मण, सुख सनेह सोभा गुनखानी, इन जानकी को जाते देख मुझे कुछ ऐसा लगता है—

लक्ष्मण : कैसा प्रभो ?

राम : मानो मैं चित्रकार बन गया हूँ ।

लक्ष्मण : (**साश्चर्य**) चित्रकार ?

राम : हाँ ! परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही ।
चारु चित्त भीतीं लिख लीन्हीं ।।

सखियों समेत सीता गिरिजा मंदिर के सामने दीखती हैं। राम और लक्ष्मण का पार्श्वमंच ३ से होकर प्रस्थान।

भीतरी रंगमंच पर नीला प्रकाश।
अन्यत्र अंधकार।

सीता : (सखियों के साथ सम्मिलित स्वर में।)

गेयस्तुति

जय जय गिरिराज किसोरी।
जय महेस मुख चंद चकोरी॥
जय गजवदन षडानन माता।
जगत जननि दामिनि दुति गाता॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना।
अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना॥
भव भव विभव पराभव कारिनि।
विश्व विमोहनि स्वबस बिहारिनि॥
पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥
सेवत तोहि सुलभ फल चारी।
वरदायनी पुरारि पिआरी॥
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥

सीता : (अकेला स्वर)

मोर मनोरथु जानहु नीकें।
बसहु सदा उर पुर सबही कें॥
कीन्हेउ प्रगट न कारन तेहीं।

घुटने टेककर मस्तक देवी के चरणों पर रखती हैं। देवी की मूर्ति पर प्रकाश, अन्यत्र कुछ अधिक अँधेरा। मूर्त्ति मुस्कराती है। उसके गले की माला खिसक जाती है। सीता के मस्तक पर देवी हाथ रखती हैं।

तुलसी स्वर : बिनय प्रेम बस भई भवानी।
खसी माल मूरति मुसुकानी ॥
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ।
बोली गौरि हरषु हियँ भरऊ ॥

मौन ! फिर गौरी का दैवी स्वर। यह स्वर मानो नेपथ्य से आ रहा है।

देवी : सुनु सिय सत्य असीस हमारी।
पूजिहि मनकामना तुम्हारी ॥
नारदवचन सदा सुचि साचा।
सो वर मिलिहि जाहि मनु राचा ॥

मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करनानिधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो ॥

सीता और उनकी सखियों के मुखड़ों पर प्रसन्नता। वे बारंबार गौरी को प्रणाम कर प्रस्थान करतीं हैं।

तुलसी और उनकी मंडली (छंद को पूरा करते हुए) :

एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली ।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली ॥

अंधकार

तृतीय दृश्य समाप्त

तुलसी : हृदय सराहत सीय लोनाई ।
गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
रामु कहा सबु कौसिक पाहीं ।
सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ॥
और विश्वामित्रजी ने दोनों को आशीष दिया—
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे ।
राम लखनु सुनि भये सुखारे ॥

दिवस यों बीत गया । रात होते ही पूर्व दिशा में चन्द्रमा सुशोभित हुआ । सांध्य पूजन के बाद एकांत स्थल में शाश्वत और पुरातन प्रीति के विरही की झाँकी ।

झाँकी २

भीतरी रंगमंच पर निरभ्र आकाश में पूर्वदिशा में चंद्रमा। एक ओर लक्ष्मण निद्रालीन धरती पर लेटे हैं दूसरी ओर राम खड़े हैं। उनका एक पैर किसी छोटी सीढ़ी पर है। ध्यानमग्न चंद्रमा की ओर देख रहे हैं। उनके मुख का पार्श्व उस नीलाभ आलोक में विरही-सुलभ वेदना से प्रदीप्त जान पड़ता है।

तुलसी स्वर : प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा।
सियमुख सरिस देखि सुषु पावा।।
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं।

राम : (पूरा गले-सा स्वर)
सीय बदन सम हिमकर नाहीं।।

जनमु सिंधु पुनि बंधु विषु दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक।।

घटइ बढ़इ विरहिनि दुखदाई।
ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई।।

कोक सोकप्रद पंकज द्रोही।
अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥
वैदेही मुख पटतर दीन्हे।
होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे॥

धीरे-धीरे भीतरी रंगमंच पर प्रकाश कम होता जाता है। राम लक्ष्मण के बराबर लेट जाते हैं। भीतरी रंगमंच पर अँधेरा। प्रकाश सूत्रधार पीठिका पर।

तुलसी : यों चंद्रमा के बहाने सियमुख की छवि की प्रशंसा कर राम ने विश्राम किया। शाश्वत प्रेम के नियंता की यह नवोदित अनुराग, मिलनोत्कण्ठा और विरह-पीड़ा की लीला चिदानंद परंब्रह्म की वह मुस्कान-लहरी ही तो है जिसे वे अपनी ही आदि शक्ति माया के प्रति भक्तों के हित प्रदर्शित करते हैं।...दूसरे दिन—

भीतरी रंगमंच पर प्रभात की प्रथम छवि का मंद और बढ़ता हुआ आलोक। पक्षियों की चहचहाहट। पूर्व दिशा के क्षितिज पर सूर्य की किरणें और फिर सूर्योदय! राम उठते हैं और लक्ष्मण भी।

बिगत निसा रघुनायक जागे।
बंधु बिलोकि कहन अस लागे॥

राम : उयउ अरुन अवलोकहु ताता ।
पंकज कोक लोक सुखदाता ।।

लक्ष्मण : (**हाथ जोड़कर**)

अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन ।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भये नृपति बलहीन ।।

सूर्य आकाश में ऊपर चढ़ता है ।

वह देखिये प्रभु, सारे नक्षत्र जिस अंधकार को हटा नहीं सके, उसे सहज ही सूर्य ने कैसे दूर कर दिया !

नृप सब नखत करहि उजिआरी ।
टारि न सकहि चाप तम भारी ।।
कमल कोक मधुकर खग नाना ।
हरषे सकल निसा अवसाना ।
ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे ।
होइहहिं टूटे धनुष सुखारे ।।

नक्षत्र लुप्त हो जाते हैं। सूर्य की किरणें प्रखर होती जाती हैं ।

तात अब तो नक्षत्र ही लुप्त हो गये । सूर्य का प्रताप फैल गया । इस बहाने सूर्य ने—

तब भुजबल महिमा उदघाटी ।
प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी ।।

राम : (**मुस्कराकर लक्ष्मण का हाथ पकड़ते हुए**) चलो लक्ष्मण । महाराज जनक के पुरोहित शतानंद-

जी मुनिवर विश्वामित्र को धनुषयज्ञ देखने के लिए आमंत्रित करने आ पहुँचे ।

प्रस्थान । भीतरी रंगमंच पर अँधेरा ।

झाँकी २ समाप्त

सूत्रधार-पीठिका पर प्रकाश । अन्यत्र, रंगस्थली दीर्घा पार्श्व मचों और भीतरी रंगमंच पर अँधेरे ही में धनुष-यज्ञशाला के दृश्य के लिए साजसज्जा की जाती है और राजा लोग नरनारी इत्यादि उपयुक्त स्थानों पर बैठते जाते हैं । इस बीच तुलसी और उनके वाचकवृन्द का संवाद जारी रहता है ।

तुलसी : पुनि मुनिवृन्द समेत कृपाला ।
देखन चले धनुष मख साला ।।

जब नगरवासियों को यह पता चला कि दोनों भाई रंगभूमि में आए हैं तो अपने काज को बिसार कर बालक, युवक, वृद्ध सभी नरनारी वहाँ पहुँचने लगे । राजा जनक ने उस भारी भीड़ को देखकर अपने सेवकों को बुलाया और

कहा—तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू ।
आसन उचित देहु सब काहू ।।···

मृदुवचन कहकर सेवकों ने नर-नारियों को अपने-अपने योग्य स्थानों पर बिठाया । और तब—

राज कुँअर तेहि अवसर आए ।
मनहुँ मनोहरता तन छाए ।।
गुन सागर नागर बर बीरा ।
सुंदर स्यामल गौर सरीरा ।।
राज समाज विराजत रूरे ।
उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे ।।

वृन्द १ : गोस्वामीजी, भगवान् राम को विभिन्न लोगों ने किस रूप में देखा ?

तुलसी : जिन्ह कें रही भावना जैसी ।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ।।

वृन्द २ : योद्धा राजाओं ने क्या देखा ?

तुलसी : देखहिं रूप महा रनधीरा ।
मनहुँ बीररसु धरें सरीरा ।।

वृन्द ३ : और दुष्टों ने ?

तुलसी : डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी ।
मनहुँ भयानक मूरति भारी ।।

वृन्द ४ : राक्षस भी तो थे वहाँ ?

तुलसी : रहे असुर छल छोनिपवेषा ।
तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा ।।

वृन्द १ : और जनकपुर के निवासीगण ?

तुलसी : पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई।
नरभूषन लोचन सुखदाई ॥

वृन्द २ : स्त्रियों ने ?

तुलसी : नारि बिलोकहिं हरषि हियँ,
निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि,
मूरति परम अनूप ॥

वृन्द ३ : ज्ञानी पंडितों ने ?

तुलसी : बिदुषन्ह प्रभु विराटमय दीसा।
बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥

वृन्द ४ : जनक राजा के बंधु-बांधवों को क्या सूझा ?

तुलसी : जनकजाति अवलोकहिं कैसे।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥

वृन्द १ : और मिथिलेश स्वयं तथा उनकी महारानी ?

तुलसी : सहित बिदेह बिलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥

वृन्द २ : पर योगियों की भावना ?

तुलसी : जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा।
सांत बुद्ध सम सहज प्रकासा ॥

वृन्द ३ : भक्तों का तो कहना ही क्या।

तुलसी : हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता।
इष्टदेव इव सब सुखदाता ॥

वृन्द ४ : राजकुमारी सीता स्वयं ?

तुलसी : वह मत पूछो !

रामहि चितव भायँ जेहि सीया ।
सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया ।।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ ।
कवन प्रकार कहै कवि कोऊ ।।

वृन्दपाठ : राजत राजसमाज महुँ कोसलराज किसोर ।
सुंदर स्यामल गौर तन विस्व विलोचन चोर ।।

सूत्रधार पीठिका पर अन्धकार । शेष सभी मंचों पर आलोक ।

चतुर्थ दृश्य

रंगस्थली १ में राजाओं के आसन अर्ध वृत्ताकार क्रम में। पार्श्वमंच ४ पर आसनों पर विश्वामित्र सहित राम-लक्ष्मण। भीतरी मंच पर जनक, उनकी रानी, पुरोहित शतानन्द इत्यादि। पार्श्वमंच ३ पर सीता, सखियों इत्यादि के लिए स्थान। इधर-उधर सेवक, भाट खड़े हैं। बीच में विशाल मंच पर शिवधनुष। दीर्घा के दोनों ओर दर्शक नर-नारी बैठे हैं। हल्का कोलाहल और हल्की लगभग अस्पष्ट संगीत-ध्वनि। लेकिन संवाद का प्रत्येक शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ता है।

जनक : (**सेवकों से**) सब नृपगणों को सादर अपने-अपने स्थान पर बैठा दिया न ?

सेवक : जी महाराज।

जनक : भीड़ बहुत है।

सेवक : किन्तु सभी दर्शक अपने यथोचित स्थानों पर

बैठ गये हैं ।

जनक : किसी से कटुवाणी तो नहीं बोले ?

सेवक : नहीं महाराज । जैसा आपने कहा था, हम लोगों ने मृदु वचन बोल कर सभी नर-नारियों से विनती की ।

जनक : मुनिवर विश्वामित्र और उनके शिष्य दोनों राजकुमार ?

सेवक : (संकेत करके) वे रहे, महाराज ।

जनक : मुनिवर की अभ्यर्थना तो करूँ ।

पार्श्वमंच ४ की ओर जाते हैं और विश्वामित्र के चरण-स्पर्श करते हैं। राम लक्ष्मण पर विशेष आलोक ।

तुलसी स्वर : मुनि पद कमल गहे तब जाई ।
हरषे जनकु देखि दोउ भाई ।।

वृन्द पाठ : सहज मनोहर मूरति दोऊ ।
कोटि काम उपमा लघु सोऊ ।।
सरद चंद निंदक मुख नीके ।
नीरज नयन भावते जी के ।।
चितवन चारु मार मनु हरनी ।
भावत हृदय जाति नहिं बरनी ।।

तुलसी : प्रभुहि देखि सब नृप हियँ हारे ।
जनु राकेश उदय भएँ तारे ।।

विशेष आलोक अब रंगस्थली १ में बैठे राजाओं पर पड़ता है ।

संवाद और प्रकाश राजाओं की पंक्तियों और राम लक्ष्मण की दिशा में ।

राजा १ : (दूसरे से) देखा तुमने, इन दो राजकुमारों को ?

जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ ।
तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ ।।

राजा २ : भई, मुझे तो ऐसा लगता है कि—

बिनु भंजेहुँ भवधनुषु बिसाला ।
मेलिहि सीय राम उर माला ।।
अस बिचारि गवनहु घर भाई ।
जसु प्रतापु बलु तेज गँवाई ।।

राजा ३ : क्या पोंच बात कही तुमने ! (हँसकर)

तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा ।
बिनु तोरें को कुअँरि बिआहा ।।
एक बार कालउ किन होऊ ।
सिय हित सभर जितव हम सोऊ ।।

राजा ४ : ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई ।
मनमोदकन्हि कि भूख बुताई ।।

राजा २ : सुंदर सुखद सकल गुन रासी ।
ए दोउ बंधु संभु उर वासी ।।
करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा ।
हम तौ आजु जनम फलु पावा ।।

भीतरी रंगमंच पर विशेष प्रकाश ।

जनक, जो अपने स्थान पर वापस पहुँच गये हैं, सेवक को बुलाते हैं।

जनक : (सेवक से) सीता की एक सखी को बुलाओ।

सेवक : जो आज्ञा। (सखी को बुला लाता है।)

सखी : आज्ञा महाराज !

जनक : राजकुमारी को रंगस्थली में सादर ले आओ।

सखी तेजी से जाती है। दर्शकों में उत्सुकतामय, संवाद। प्रकाश दर्शक-पर नारियों की दिशा उनकी आपसी बातचीत सुनाई पड़ती है—सीता के सखियों सहित आते समय सखियों का मंगलगान लेकिन नेपथ्य में तुलसी और वृन्दपाठ तथा नरनारियों की श्रापसी बातचीत उसके ऊपर स्पष्ट सुनाई पड़ती है। सखियों सहित सीता प्रवेश १० से भीतरी रंगमंच पर पिता-माता को प्रणाम कर रंगस्थली १ की परिक्रमा कर पार्श्वमंच ३ पर स्थान ग्रहण करते चलती है। इस बीच।

तुलसी सहित सिय सोभा नहिं जाइ बखानी।

वृन्द पाठ : जगदंबिका रूप गुन खानी॥

जौं पटतरिअ तीय सम सीया।

जगअसि जुबति कहाँ कमनीया॥

गिरा मुखर तन अरध भवानी।

रति अति दुखित अतनु पतिजानी॥

विष बारुनी बंधु प्रिय जेही।
कहिअ रमासम किमि बैदेही॥

तुलसी : जौं छबि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू।
मथै पानि पंकज निज मारू॥

तुलसी : राम रूप अरु सिय छबि देखें॥
नर नारिन्ह परिहरीं निमेष।

वृन्द पाठ : एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥

स्त्री १ : राजकुमारी कितनी सुन्दर दीख रही हैं!

स्त्री २ : देखो देखो—सोह नवल तनु सुन्दर सारी।

स्त्री ३ : और—भूषन सकल सुदेस सुहाए॥

स्त्री ४ : पानिसरोज सोह जयमाला।

स्त्री १ : राजाओं की निगाह कैसी टिकी है—
अवचर चितए सकल भुआला।

स्त्री २ : सुन री। सीता यों अपनी सखियों ही की
ओर क्यों देख रही हैं?

स्त्री ३ : गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि।

पहला पुरुष : राजकुमार रामचन्द्र को जितना ही देखता हूँ
उतना ही—

दूसरा : उतना ही क्या?

पहला : (आहिस्ता से)

मति हमारि असि देई दुहाई ।
हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई ।।

तीसरा : तुमने मेरे मुँह की बात छीन ली !

एहिं लालसाँ मगन सब लोगू ।
बरु साँवरो जानकी जोगू ।।

जनक : भाटगण, तनिक इधर आइये ।

भाट : जी स्वामी ।

जनक : अब आप इस सभा के समक्ष मेरा प्रण घोषित कीजिये ।

भाट : महाराज, हम इसी अवसर की बाट जोह रहे थे । (सोल्लास दूसरे से) नगाड़ा बजाओ ।··· (सभा शांत) हे पृथ्वी का पालन करने वाले उपस्थित राजागण । सुनिये ! पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल । सामने मंच पर स्थित यह शिवधनुष अत्यंत भारी है, कठोर है, यह सभी जानते हैं ! आपको यह भी विदित होगा कि रावण और बाणासुर जैसे महा-बलियों को भी इसे छूने तक का साहस नहीं हुआ । समझ लीजिये कि आप लोगों का भुजा-बल तो मानो चंद्रमा है और यह कठोर धनुष उसे ग्रसने वाला राहु है !···हमारे स्वामी मिथिलेश जनक की घोषणा है कि—

पहले एक भाट एक अर्धाली कहता है,
फिर दूसरे दोहराते हैं।

सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा।
राजसमाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही।
बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥

क्षणिक विराम के बाद राजा लोग एक एक करके उठकर इष्टदेव का मनन कर धनुष उठाने और उसे तोड़ने की चेष्टा करते हैं। उस बीच दर्शक नर-नारियों का आपस में वार्तालाप।

पुरुष १ : देखो देखो, कैसे तमतमा कर ये राजा लोग धनुष की ओर जा रहे हैं।

पुरुष २ : पर एकाध तो अपने आसन से उठा ही नहीं।

पुरुष ३ : वे समझदार हैं, देखो न। वह जो तमक कर जोर आजमाने चला था, तनिक भी तो टरका नहीं सका धनुष को।

पुरुष १ : अरे अरे···एक-दो-तीन···चार··पाँच छह एक-एक करके सभी तो जोर लगा रहे हैं।

पुरुष २ : देखो एक साथ मिलकर उठाने की चेष्टा भी कर रहे हैं।

पुरुष ४ : जान पड़ता है और भी भारी हो गया वह धनुष——
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ॥

पुरुष ३ : एक साथ तो जुटे सब पर…पर…

पुरुष १ : डगइ न संभु सरासनु कैसें ।
कामी बचन सती मनु जैसें ।।

पुरुष २ : सब नृप भए जोगु उपहासी ।
जैसें बिनु बिराग संन्यासी ।।

पुरुष ३ : सभी राजा श्रीहत होकर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये । अब क्या होगा ?

पुरुष १ : होगा क्या ? लौटेंगे अपना-सामुँह…

पुरुष २ : चुप ! चुप । महाराज जनक कुछ कह रहे हैं !

पुरुष ४ : शान्त ! शान्त !

दर्शक समूह चुप होकर जनक की आकुल और रोषमयी वाणी सुनता है।

जनक : मेरे अतिथियो ! मैं यह क्या देख रहा हूँ ?
दीप दीप के भूपति नाना ।
आए सुनि हम जो पनु ठाना ।।
मेरी मनोहर कन्या, महाविजय और अति कमनीय कीर्ति-लाभ के लिए इस धनुष का दमन करने वाला वीर क्या विधाता ने रचा ही नहीं ? इस धनुष को तोड़ना तो अलग रहा, कोई इसे तिल-भर भूमि से भी न छुड़ा सका ।
(सावेश)
अब जनि कोउ माखै भटमानी ।
बीरबिहीन मही मैं जानी ।।

तजहु आसु निज निज गृह जाहू ।
लिखा न विधि बैदेहि बिबाहू ।।

(रुककर ग्लानि भरे स्वर में ।)

सुकृत जाइ जो पनु परिहरऊँ ।
कुँअरि कुँआरि रहउ का करऊँ ।।

(पुनः आक्रोशपूर्ण स्वर में)

जौ जनतेउ बिनु भट भुबि भाई ।
तौ पनिकरि होतेउँ न हँसाई ।।

दर्शकों इत्यादि में मंद और हताश-से स्वर में बातचीत ।

स्त्री १ : हाय ! अब क्या हो !

स्त्री २ : मेरा तो जी राजकुमारी जानकी को देख कर दुखारी हो रहा है ।

स्त्री ३ : और दोनों राजकुमार ?

स्त्री १ : अरे, दोनों में छोटावाला कुछ कह रहा है ।

स्त्री २ : उसका मुख तो देखो !

माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें ।
रदपट फरकत नयन रिसौहें ।।

राम लक्ष्मण की दिशा में प्रकाश । लक्ष्मण राम को प्रणाम करके बोलते हैं ।

लक्ष्मण : हे तात !...

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोइ होई ।
तेहिं समाज अस कहइ न कोई ।।

राजा जनक ने आपके यहाँ होते हुए बड़ी अनुचित वाणी कही है ।···(**सरोष और उच्च स्वर में**)

सुनहु भानुकुल पंकज भानू ।
कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू ।।
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं ।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ।।
काचे घट जिमि डारौं फोरी ।
सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी ।।
तव प्रताप महिमा भगवाना ।
को बापुरो पिनाक पुराना ।।
नाथ जानि अस आयसु होऊ ।
कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ ।।
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं ।
जोजन सत प्रमान लै धावौं ।।

(**कुछ रुककर**) हे नाथ, यदि आपके प्रताप के बल से इसे कुकुरमुत्ते की तरह न तोड़ फेंकूँ तो आपके चरणों की शपथ है मुझे, मैं फिर कभी धनुष और तरकश को हाथ नहीं लगाऊँगा ।

सभा कुछ देर स्तब्ध । फिर कुछ बात-चीत का स्वर ।

पुरुष १ : (**दूसरे से**) सुना !···

पुरुष २ : पर···पर···वह देखो । बड़ा भाई क्या कर

रहा है ? वह भी कुछ कहेगा क्या ?

पुरुष ३ : ना !…वह तो छोटे भाई को इशारे से शांत कर रहा है।

सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे।
प्रेम समेत निकट बैठारे॥

स्त्री १ : विश्वामित्र मुनि उठ रहे हैं।

स्त्री २ : (**भयभीत स्वर**) जा रहे हैं क्या ?

स्त्री ३ : नहीं। बड़े राजकुमार से कुछ कह रहे हैं।

विश्वामित्र राम को संबोधित करके बोलते हैं।

विश्वामित्र : दशरथनन्दन ! पुरुष सिंह, तुम्हें ही इस संकट का निवारण करना है।

उठहु राम भंजहु भवचापा।
मेटहु तात जनक परितापा॥

स्त्री १ : खड़े हो गये राम।

स्त्री २ : पर…पर देखो, मुखड़े से लगता है—

हरष विषादु न कछु उर आवा।

स्त्री ३ : मुझे तो इनका सहज सुभाव से उठना अच्छा लगता है।

ठाढ़ भए उठि सहज सुभाएँ।
ठवनिजुबा मृगराज लजाएँ॥

स्त्री २ : हे देवताओ ! हे पितरो ! यदि हमारे पुण्यकर्मों का कुछ भी प्रभाव है तो—

स्त्री २ : तौ सिवधनु मृनाल की नाईं ।
तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं ।।

सीता की माता महारानी जल्दी से पार्श्वमंच ३ पर सीता के पास जाकर सखियों से कहती हैं ।

महारानी : अरे, तुम सब क्या कर रही हो ? हाय, इतने सारे तो हमारे हितचिंतक लोग खड़े हैं, लेकिन सब-के-सब मानो कौतुक निहार रहे हैं । अरे कोई जाकर इन दोनों के गुरु विश्वामित्र को समझाता क्यों नहीं ? मेरे पतिदेव भी अपना सयानापन खो बैठे हैं ।

रावन बान छुआ नहिं चापा ।
हारे सकल भूप करि दापा ।।
सो धनु राजकुँअर कर देहीं ।
बालमराल कि मंदर लेहीं ।।

सखी १ : हे रानी, ऐसे तेजवंत को छोटा नहीं गिनना चाहिए ।

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा ।
सोषेउ सुजसु सकल संसारा ।।
रबिमंडल देखत लघु लागा ।
उदयँ तासु त्रिभुवन तम भागा ।।

सखी २ : छोटा-सा मंत्र ब्रह्मा-विष्णु-महेश को बस में कर लेता है ।

स्त्री ३ : जरा-सा अंकुश महामत्त गजराज को दबा लेता है ।

सखी १ : देवि तजिअ संसउ अस जानी ।
भंजब धनुष राम सुनु रानी ।।

महारानी : सखियो, तुम जरा सीता को सम्हालो । न जाने क्या बीत रही है इसके जी पर ?

तुलसी तब रामहिं बिलोकि बैदेही ।
वृन्द सहित : सभय हृदयँ बिनवत जेहि तेही ।।
मनहीं मन मनाव अकुलानी ।
होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।
नीकें निरखि नयन भरि सोभा ।
पितु पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा ।।
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा ।
सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा ।।
सकल सभा कै मति भै भोरी ।
अब मोहि संभु-चाप गति तोरी ।।
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी ।
होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी ।।

सखी १ : राजकुमारी, परिताप मत करो ।

सखी २ : (आहिस्ता से) राजकुमारी, चिंता के मारे तुम्हारी आँखें इधर-उधर डोल रही हैं ।

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधुमंडल डोल ।।

सखी ३ : बोलतीं क्यों नहीं राजकुमारी ?

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी ।
प्रगट न लाज निसा अवलोकी ।।

सखी २ : लोचन जलु रह लोचन कोना ।
जैसें परम कृपन कर सोना ।।

सीता नेत्रमुँदे, ध्यानमग्न

सखी १ : (**अंतरंग स्वर में**) सीता रानी, आपका प्रण तन-मन-वचन से सच्चा है । इसलिए सखी—
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहु ।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ।।

सखी २ : आँखें खोलो राजकुमारी, वे तुम्हारी ओर देख रहे हैं ।

सखी ३ : सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे ।
चितव गरुड़ लघु ब्यालहि जैसे ।।

सखी २ : देखो, देखो, लक्ष्मण बैठे-ही-बैठे क्या कह रहे हैं ?

सखी १ : सुनाई नहीं पड़ता, मानो अपने-से बात करते हों ।

लक्ष्मण धरती को अपने पैरों से दबाकर ।

लक्ष्मण : (**मंद किंतु आदेशपूर्ण स्वर में**) हे दिशाओं के हाथियो, हे धरती को धारण करने वाले कच्छप शेषनाग, बाराह !
रामु चहहिं संकर धनु तोरा ।

होहु सजग सुनि आयसु मोरा ।
धरहु धरनि धरि धीर न डोरा ।

थोड़ी देर सर्वत्र मौन मानो धरती ठहर गयी हो ।……राम धनुष उठाते हैं। हठात् गर्जन और प्रकाश । दर्शकों में अचरज ।

पुरुष १ : यह क्या हुआ ?

पुरुष २ : कैसी दामिनि दमकी ।

पुरुष ३ : आकाश में यह गोल-गोल-सा आकार कहाँ-से आया ?

पुरुष १ : वही तो धनुष है ।

पुरुष २ : उठा भी लिया ?

पुरुष ३ : इतनी फुरती के साथ कि हम लोग देख भी न पाये ।

पुरुष १ : देखो, देखो, राम अब उसे तोड़ रहे हैं ।

भयंकर कठोर ध्वनि । उसके बाद जय-जय ध्वनि । वाद्य और गान के सम्मिलित स्वर जिसके ऊपर वृन्द-गान सुनाई पड़ता है, लेकिन गान-मंडली पर प्रकाश नहीं ।

वृन्दगान

तुलसी वृन्द : भरे भुवन घोर कठोर रव रबिबाजि तजि मारगु चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ।।

सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं ॥

तुलसी : संकर चाप जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु ।
बूड़ सो सकल चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस ॥

क्रमशः ध्वनियाँ मंद होती जाती हैं। दर्शकों में बातचीत होती है। उधर पुरोहित शतानंद पार्श्वमंच ३ पर जाकर सखियों और सीता से कुछ कहते हैं।

पुरुष १ : धन्य हो ! धन्य हो राजकुमार ! कैसे सहज ही कोदंड तोड़ कर धरती पर डाल दिया ।

पुरुष २ : देखो, देखो धनुष टूटते ही—सखिन्ह सहित हरषी अतिरानी । सूखत धान परा जनु पानी ।

पुरुष ३ : और महाराज जनक ! सारी चिंता छूट गई । पैरत थकें थाह जनु पाई ।

पुरुष ४ : (**हँसकर**) तनिक अन्य राजाओं को तो देखो— श्रीहत भए भूप धनु टूटे । जैसे दिवस दीप छबि छूटे ॥

पुरुष १ : मैं तो राजकुमारी सीता को देख रहा हूँ ।
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती ।
जनु चातकी पाइ जल स्वाती ॥

पुरुष २ : और लक्ष्मण—रामहि लखनु बिलोकत कैसें ।
ससिहि चकोर किसोरक जैसें ॥

शतानंद : परिचारिकाओ, राजकुमारी को रघुवंश मणि

राम के निकट ले चलो। जयमाल पकड़ाओ।
...आगे बढ़ो बेटी !

सखियों के मंगल-गीत की ध्वनि, जिसकी गतिताल विलम्बित है सीता की धीमी चाल के अनुसार।

वृन्दगान

वृन्द : संग सखीं सुंदर चतुर गावहिं मंगलचार।
गवनी बालमराल गति सुषमा अंग अपार॥
सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें।
छबिगन मध्य महाछबि जैसे॥
करसरोज जयमाल सुहाई।
बिस्वबिजय सोभा जेहिं छाई॥

राम के समीप जाकर सीता रुकती हैं और चित्र में लिखी-सी रह जाती हैं। गान भी बंद यद्यपि हलका वाद्यस्वर।

सखी १ : राजकुमारी, सामने रघुवीर राम खड़े हैं। अब संकोच न करो।

सखी २ : पहिरावहु जयमाल सुहाई।

सखी ३ : बेचारी ! प्रेमबिबस पहराइ न जाई। (**सखियों की मंद हँसी**)

सखी २ : जब उन्हें इतना भी स्पर्श नहीं कर पातीं तो पैर कैसे छुओगी राजकुमारी ?

सखी ४ : समझी नहीं सखी ? गौतमतिय गति सुरति

नहिं परसति पग पानि ।

सखी ३ : राजकुमारी के इस भय की बात सुनकर तो रघुबंसमनि मुस्करा उठे ।

सखी २ : राजकुमारी, वे मुस्करा रहे हैं । यही अवसर है ।

सखी १ : राजकुमार के चाँद-से मुख से हमारी राजकुमारी के करकमल भयभीत हैं ।...गाओ, गाओ !...जयमाल पड़ रही है—

वृन्दगान : उसी धुन में

गावहिं छवि अवलोकि सहेली ।
सियँ जयमाल राम उर मेली ।।
महिपाताल नाक जसु ब्यापा ।
राम बरी सिय भंजेउ चापा ।।
सोहति सीय राम कै जोरी ।
छबि सिंगार मनहुँ एक ठोरी ।।

जयमाल पड़ते ही अनेक स्वरों में जयजय ध्वनि । तरह-तरह के वाद्यों के स्वर—कुसुमांजलियाँ-विरुदावलियाँ ।—अनेक सम्मिलित स्वर । धीरे-धीरे कम होते हुए गान । वाद्यस्वरों के बीच राजाओं की आपसी कर्कश बातचीत ।

तुलसी : तब सिय देखि भूप अभिलाषे ।
कूर कपूत मूढ़ मन माखे ।।

उठि उठि पहरि सनाह अभागे।
जहँ तहँ गाल बजावन लागे।।

राजा १ : यह भी कोई बात है।

राजा २ : उठाओ खड्ग ! पहनो कवच !

राजा ३ : क्यों भई, क्यों ?

राजा ४ : छीन लो सीता को। तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई !

राजा १ : दोनों राजकुमारों को बाँधकर ले चलो। जीवत हमहिं कुँअरि को बरई ?

राजा ४ : और महाराज जनक उनकी मदद करें तो ?

राजा २ : तो भी ? जीतहु समर सहित दोउ भाई।

राजा ४ : कैसी निर्लज्ज बातें कर रहे हैं आप लोग ! उस समय आपकी शूरता कहाँ थी जब धनुष तोड़ना था ? बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहिं संग सिधाई।

राजा ३ : देखहु रामहि नयन भरि तजि इरिषा मदु कोहु।
लखन रोषु पावकु प्रबल जानि सलभ जनि होहु।।

अन्य राजागण : (**सावेश**) बको मत ! बढ़ो आगे।

कोलाहल : अनेक स्वर

सखी : राजकुमारी, उधर चलिए।

ले जाती हैं

पुरुष दर्शक १ : कैसे बेहया हैं ये लोग !

पुरुष २ : लक्ष्मण को देखते नहीं।...एक बार ही में सब की अक्ल ठिकाने लगा देंगे।

पुरुष ३ : अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप ! मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघकिसोरहिं चोप।

बढ़ते कोलाहल में प्रतिहारी के स्वर-
शांत ! शांत...आप लोग बैठें।

पुरुष १ : अरे उधर देखो...उधर देखो; प्रवेश द्वार की तरफ।

पुरुष २ : यह कौन आ रहा है ? वृषभकंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला !

पुरुष ३ : कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधें। धनु सर कर कुठारु कल काँधे।

पुरुष १ : भृगुपति ! परशुराम !

सभी : (**सभीत**) परशुराम !

कोलाहल कम

सेवक : हे सभासदो ! हे राजागण ! आप लोग शांत भाव से अपने-अपने स्थान पर बैठ जाइये। भृगुकुलकमलपतंग परशुरामजी पधारे हैं।
सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीररसु आयउ जहँ सब भूप।।
...(**परशुराम का प्रवेश**) आप सब क्षत्रिय राजा-

गण अपने-अपने पिता का नाम लेकर मुनिवर को दण्डवत् प्रणाम करें।

अनेक राजा ऐसा ही करते हैं।

पुरुष दर्शक १ : देखो, देखो, कैसे भयभीत होकर विनम्र भाव से पैर छू रहे हैं।

पुरुष २ : परशुराम के आगे कौन क्षत्रिय राजा अकड़ दिखा सकता है।

पुरुष ३ : वह देखो, राजा जनक राजकुमारी सीता को लेकर पहुँचे।

पुरुष १ : परशुराम आशीर्वाद दे रहे हैं।

पुरुष २ : वह देखो, विश्वामित्र भी आगे बढ़े दोनों राजकुमारों को लेकर।

पुरुष ३ : दोनों मुनि कैसे गले मिल रहे हैं—एक क्षत्रिय रिपु ब्राह्मण! और दूसरा क्षत्रिय जन्मा ब्राह्मण।

पुरुष १ : दोनों राजकुमारों को भी आशीष दे रहे हैं।

पुरुष २ : चलो, यह भी अच्छा हुआ।

परशुराम बोलते हैं। सभा शान्त।

परशुराम : विदेहराज जनक! आपकी इस रंगस्थली में इतनी भीड़ किसलिए है?

जनक : मुनिवर, बात ऐसी है कि मेरी, बेटी सीता, जिसे आपने अभी अपना शुभाशीर्वाद दिया है, उसका स्वयंवर था। इसीलिए ये सभी राजागण मेरे अतिथि होकर आये हैं। और इसी-

लिए सभा में यह सजावट शोभा भी आप देख रहे हैं।

परशु : स्वयंवर…हूँऽ!…शोभा सजावट तो खूब ठाठ-दार है !…पर…उधर यह धनुष क्यों टूटा पड़ा है ?

जनक : जी, मैंने यह प्रण किया था कि जो वीर इस धनुष को तोड़ेगा वही सीता का स्वामी होगा। तो—

परशु : (**बात काटकर**) देखूँ तो कैसा धनुष है यह…। (**ध्वस्त धनुष के करीब जाते हैं**) अरे ! (**क्रुद्ध स्वर में**)यह तो शिवजी का—मेरे आराध्यदेव का—वही धनुष है ! (**सावेश**)

कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू।
उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू॥

राजा जनक चुप ! सभा में तरह-तरह के स्वर जिसमें से सीता की माता के सभीत शब्द सुनाई पड़ते हैं।

महारानी : हाय ! यह क्या हो रहा है। बिधि अब सँवरी बात बिगारी।

सखी २ : परशुराम मुनि का स्वभाव तो बड़ा कठोर है।

सखी १ : राजकुमारी सीता, चिंता मत करो ! रघुवीर स्वयं खड़े होकर उत्तर दे रहे हैं।—

हृदयँ न हरषु विषादु कछु बोले श्रीरघुबीर ।

राम : नाथ संभुधनु भंजनिहारा ।
होइहि केउ एक दास तुम्हारा ।।
आयसु काह कहिअ किन मोहो ।

परशु : मेरा दास ?...
सेवकु सो जो करै सेवकाई ।
अरि करनी करि करिअ लराई ।।
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा ।
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ।।
सो बिलगाउ विहाइ समाजा ।
न त मारे जैहहिं सब राजा ।।

लक्ष्मण : (**व्यंग-भरे स्वर में**) मुनिवर,
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं ।
कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं ।।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू ।

परशु : रे नृपबालक कालबस बोलत तोहि न सँभार ।
धनुही सम त्रिपुरारि धनु विदित सकल संसार ।।

लक्ष्मण : (**हँसकर**)
सुनहु देव सब धनुष समाना ।
का छति लाभु जून धनु तोरें ।
देखा राम नयन के भोरें ।।
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू ।
मुनि विनु काज करिअ कत रोसू ।।

परशु : (**अपना फरसा दिखाते हुए**) रे शठ, तूने मेरा

स्वभाव नहीं सुना क्या ?

बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही ।
केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही ।
बिस्वबिदित छत्रिय कुल द्रोही ॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही ।
विपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
रे महीपकुमार, देख यह फरसा ।
मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर ।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ॥

लक्ष्मण : **(मृदु हँसी, व्यंग्य स्वर)** अहो मुनीस महा भटमानी ।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू ।
चहत उड़ावन फूँकि पहारू ॥
सुनिये महाराज······**(तेज स्वर)**
इहाँ कुम्हड़ बतिआ कोउ नाहीं ।
जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥
देखि कुठारु सरासन बाना ।
मैं कछु कहा सहित अभिमाना ॥
आपको भृगुवंशी समझकर, आपके जनेउ को देखकर, आप जो कुछ कह रहे हैं, उसे मैं अपना रिस रोककर सहता रहा हूँ ।···हमारे कुल की रीत है—सुर, महिसुर, हरिजन और गाय—इन पर हम लोग अपनी वीरता नहीं दिखाते ।

बधें पाप अपकीरति हारे।
मारतहूँ पापरिअ तुम्हारे ।।
···किन्तु मुनिवर,
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा ।
व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ।।
इन्हें आप उठाकर रख दीजिये और ब्राह्मण के नाते—
जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।

परशु : (सरोष) विश्वामित्र, तुम सुन रहे हो ?
कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु ।
कुटिल कालबस निज कुल घालकु ।
भानुबंस राकेस कलंकू ।
निपट निरंकुस अबुध असंकू ।।
कालकवलु होइहि छन माहीं ।
कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं ।।
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा ।
कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा ।।

लक्ष्मण : हे मुनि, आपके सुयश का वर्णन आपके रहते हुए और कौन कर सकता है ?
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी ।
बार अनेक भाँति बहु बरनी ।।
नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू ।
जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ।।

बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा ।
गारी देत न पावहु सोभा ।।
सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु ।।
लेकिन आप मुनिवर ?
तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा ।
बार बार मोहि लागि बोलावा ।।

परशु : (**तिलमिला कर फरसा हाथ में उठा-उठा कर**) सुनो विश्वामित्र,
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू ।
कटुवादी बालकु बध जोगू ।।
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा ।
अब यहु मरनिहार भा साँचा ।।

विश्वा० : क्षमा करें बंधुवर ! इससे अपराध हुआ ।
बाल दोष गुन गनहिं न साधू ।

परशु : विश्वामित्र ! खर कुठार मैं अकरुन कोही ।
आगें अपराधी गुरुद्रोही ।। यह उद्धत बालक उत्तर देता जा रहा है फिर भी बिना मारे इसे छोड़े देता हूँ ।
उतर देत छोड़उँ बिनु मारें ।
केवल कौसिक सील तुम्हारे ।।
न त एहि काटि कुठार कठोरें ।
गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे ।

विश्वामित्र के मुख पर रहस्यभरी मुस्कान

तुलसीस्वर : गाधिसूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अयमय लाड़न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ ।।

लक्ष्मण : हे भृगुपति परशुराम, आपके शील का क्या कहना ? को नहिं जान बिदित संसारा ।
माता पितहिं उरिन भए नीकें ।
गुरु रिनु रहा सोचु बड़ जीकें ।।
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा ।
दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा ।।
अब आनिअ व्यवहरिआ बोली ।
तुरत देउँ मैं थैली खोली ।।

परशुराम फरसा उठाकर आघात करने को टूटना-सा चाहते हैं । सभा में खलबली ।

सखी १ : हाय हाय । अब क्या होगा ?

पुरुष १ : क्या सच ही संहार कर देंगे ये क्रोधी मुनि ?

पुरुष २ : पर लक्ष्मण भी डटे खड़े हैं निर्भय ।

लक्ष्मण : भृगुवर परसु देखावहु मोही ।
बिप्र बिचारि बचउँ नृपद्रोही ।।
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े ।
द्विजदेवता धरहि के बाढ़े ।।

सभा में से 'अनुचित है' 'यह अनुचित है' की मंद आवाजें । राम लक्ष्मण को संकेत करके रोकते हैं और फिर खड़े होते हैं ।

पुरुष १ : देखो, रामचंद्र ने छोटे भाई को इशारे से रोक दिया।

एक स्त्री : कैसे शांत स्वभाव से खड़े होकर बोल रहे हैं रघुपति।

राम : नाथ करहु बालक पर छोहू।
सूध दूधमुख करिअ न कोहू ।।
जौं पै प्रभुप्रभाव कछु जाना।
तौ कि बराबरि करत अयाना ।।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं।
गुर पितु मातु मोद मने भरहीं ।।
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी।
तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ।।

परशु : हूँऽ। (लक्ष्मण हलका-सा हँस देते हैं।) लेकिन फिर हँसा! फिर हँसा तेरा यह भाई।
राम तोर भ्राता बड़ पापी ।।
गौर सरीर स्याम मन माहीं।
कालकूट मुख पयमुख नाहीं ।।
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही।
नीचु मीचुसम देख न मोही ।।

लक्ष्मण : (हँसते हुए) सुनहु मुनि! क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व-प्रतिकूल ।।
मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया।
परिहरि कोपु करअि अब दाया ।।

टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने ।
बैठिअ होइहिं पाय पिराने ।।
जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई ।
जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई ।।

जनक : (जो अब तक चुपचाप सुन रहे थे, भयभीत-से होकर) बहुत हुआ राजकुमार लक्ष्मण । मष्ट करहु, अनुचित भल नाहीं ।

परशु : (क्रोध से विक्षुब्ध होकर लेकिन एक प्रकार की हीनता का अनुभव करते हुए जो क्रोधी पुरुष के शक्तिक्षय का द्योतक है) राम, मैं तेरे ऊपर यह कम अहसान नहीं कर रहा हूँ कि बचऊँ बिचारि बंधु लघु तोरा । इसका तो—
मन मलीन तनु सुंदर कैसे ।
विषरस भरा कनकघटु जैसे ।।

लक्ष्मण हँसते हैं । किन्तु राम तरेरते नयन से उनकी ओर देखते हैं । प्रभु उनकी विपरीत वाणी को नापसंद कर रहे हैं, ऐसा जानकर लक्ष्मण वापस गुरु विश्वामित्र के पास जा बैठते हैं ।

राम : (दोनों हाथ जोड़कर, अति विनीत मृदु सीतन वाणी में)
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना !
बालकवचनु करिअ नहिं काना ।।
बररै बालकु एकु सुभाऊ ।

इन्हहि न संत विदूषहिं काऊ ॥
वास्तव में मुनिवर—
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा ।
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोपु बधु बँधव गोसाईं ।
मो पर करिअ दास की नाईं ॥
कहिअ वेगि जेहि विधि रिस जाई ।
मुनिनायक सोइ करैं उपाई ॥

परशु : राम मेरा रोष कैसे जा सकता है, देख तो ।
अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें ? (**फिर तिल-मिलाकर**) मेरा रोष क्या वृथा हो जाय ?
नहीं । नहीं ।
एहि कें कंठ कुठारु न दीन्हा ।
तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा !
यह भी कोई बात है ?…

गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठारगति घोर ।
परसु अछत देखउँ जिअत बैरी भूपकिसोर ॥

…उफ्, यह मुझे हो क्या गया है । कैसी… कैसी…मजबूरी ने मुझे जकड़ लिया है ?
बहइ न हाथु दहइ रिस छाती ।
भा कुठारु कुंठित नृपघाती ॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ ।
मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊँ ?

(कुछ शिथिल पर तप्त-से स्वर में) शायद···शायद ···आजु दया दुखु दुसह सतावा !

लक्ष्मण : (पुनः मंद हँसी के साथ) महामुनि, आपकी कृपा-रूपी वायु-रोग भी आपकी मूर्त्ति के अनुकूल ही है। बोलत जरत वचन जनु फूला। जब कृपा करते समय ही आपका शरीर जला जाता है, तो क्रोध भएँ तनु राख विधाता।

परशु : (जनक जी से)

देखु जनक हठि बालकु एहू।
कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू।।
बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा।
देखत छोट खोट नृपढोटा।।

लक्ष्मण : (मंद मुस्कान और इतने धीमे स्वर में मानो स्वगत बोलते हों) मूँदे आँख कतहूँ कोउ नाहीं।

परशु : (राम से) रामचंद्र !······असली दोषी तो तू है और फिर भी संबोधन करता है।

संभुसरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु।
मुझे तो ऐसा लगता है कि—
बंधु कहइ कटु संमत तोरें।
तू छल विनय करसि कर जोरें।।
करु परितोषु मोर संग्रामा।
नाहिं त छाड़ कहाउब रामा।।

छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही ।
बंधुसहित न त मारउँ तोही ॥

दर्शकों में कुछ मर्मर ध्वनि

पुरुष १ : वाह ! यह कैसी उलटी बात मुनि कह रहे हैं ।

पुरुष २ : पता नहीं, राम चुपचाप इतनी बकवास क्यों सुन रहे हैं ?

पुरुष ३ : उनके भी मन में कुछ तो विचार आता ही होगा ।

पुरुष ४ : शायद वे सोचते हों कि—गुनाह लखन कर हम पर रोष !

पुरुष १ : कहीं-कहीं सीधापन भी दोष हो जाता है ।
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू ।
वक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू ॥

राम : हे मुनीश्वर, क्रोध तज दें । आपके कुठार के आगे यह मेरा सिर है ।
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी ।
मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥
प्रभुहि सेवकहि समर कस तजहु बिप्रवर रोसु ।
वेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु ॥
(कुछ रुककर) बात ऐसी है मुनिवर कि लक्ष्मण तो लड़का है ही ।
देखि कुठार बान धनुधारी ।
भै लरिकहि रिस बीरु विचारी ॥

नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा ।
बंससुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा ॥
यदि आप अन्य मुनियों की भाँति होते तो हे गोसाईं, यही शिशु आपकी पदरज अपने सिर पर रखता ।
छमहु चूक अनजानत केरी ।
चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी ॥
हे नाथ हम आपके बराबर होने को कैसे धृष्टता कर सकते हैं ? कहाँ तो धरती पर चलनेवाले चरण, और कहाँ उन्नत मस्तक ? और फिर—
राममात्र लघु नाम हमारा ।
परसु सहित बड़ नाम तोहारा ॥
देखिये, हमारा तो एक ही गुण है—धनुष ! और आपके नौ गुण हैं—शम दम तप इत्यादि और—सभी परम पुनीत । विप्रवर,
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे ।
छमहु विप्र अपराध हमारे ॥

सभा में कुछ मंद स्वर

परशु० : **(वह हँसी जो थोड़े-बहुत अविश्वास, थोड़े-बहुत रोष से उपजती है)** तू भी अपने भाई की भाँति ही टेढ़ा जान पड़ता है ।···मुझे निपट ब्राह्मण ही न जान ! सुन तुझे बताता हूँ कि कैसा विप्र

हूँ मैं—

चाप स्रुवा सर आहुति जानू ।
कोपु मोर अति घोर कृसानू ।।
समिधि सेन चतुरंग सुहाई ।
महामहीप भए पसु आई ।।
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे ।
समरजन्य जप कोटिन्ह कीन्हे ।।

तू ब्राह्मण-मात्र के धोखे से मेरा निरादर कर रहा है । भंजेउ चापु दापु बढ़ बाढ़ा । अह-मिति मनहुँ जिति जगु ठाढ़ा ।

राम : मुनिवर तनिक विचार करें ।

रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी ।
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना ।
मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ।।

हे भृगुनाथ, यदि हम सचमुच किसी को विप्र कहकर विप्र का निरादर करेंगे तो यह सत्य भी सुनिए कि संसार में ऐसा कौन योद्धा है जिससे डर कर हम अपना मस्तक नवायें ?

देव दनुज भूपति भट नाना ।
समबल अधिक होउ बलवाना ।।
जौं रन हमहि पचारै कोऊ ।
लरहिं सुखेन कालु किन होऊ ।।
छत्रियतनु धरि समर सकाना ।
कुछ कलंकु तेहिं पावँर आना ।।

कहउँ सुभाउ त कुलहि प्रसंसी ।
कालहु डरहिं न रन रघुवंसी ॥

(**पुनः संयत शांत स्वर**) मुनिवर ऐसी महिमा है ब्राह्मण-वंश की कि जो आप से डरता है वह निर्भय हो जाता है ।

बिप्रवंस कै असि प्रभुताई ।
अभय होइ जो तुम्हहि डेराई ॥

एक दैवी शांति सभा को आवृत्त कर लेती है । और फिर दैवी वाद्यस्वर जो परिवर्तन का द्योतक है और जो भृगुपति परशुराम के अंतःकरण में हो रहा है, जिसे एक दैवी संगीत ही अभिव्यक्त कर सकता है ।

परशु : (**बिल्कुल भिन्न स्वर**) हे राम !···क्या कहूँ मैं ! लगता है मेरी बुद्धि के पटल उधर गये हैं ।··· पर फिर ?···राम रमापति करधनु लेहू । खैंचहु चाप मिटै संदेहू

धनुष पकड़ाते हैं । अलौकिक सरसराहट की ध्वनि । धनुष आप-ही-आप परशुराम के पास से राम के हाथों में चला जाता है । दर्शक नर-नारियों में आश्चर्य-ध्वनि ।

पुरुष १ : अरे अरे यह कैसा चमत्कार !

पुरुष २ : धनुष आप-ही-आप मुनि के हाथों से उड़कर राम के पास पहुँच गया ।

पुरुष ३ : अद्‌भुत ! राजकुमार हैं कि देवता ?

स्त्री १ : देखो ! भृगुपति परशुराम हाथ जोड़ रहे हैं ।

दूसरी : अरे, ये तो राजकुमार राम के आगे विनती कर रहे हैं । सुनो, सुनो ।

परशु० : हे राम मैं चमत्कृत हूँ । तन पुलकित है । मेरे हृदय में प्रेम नहीं समाता । आपका अनंत प्रभाव मैं समझ गया ।

हाथ जोड़ कर स्तुति करते हैं ।

स्तुति

जय रघुबंस बनज बन भानू ।
गहन दनुजकुल दहन कृसानू ।।
जय सुर विप्र धेनु हितकारी ।
जय मद मोह कोह भ्रमहारी ।।
बिनय सील करना गुन सागर ।
जयति बचन रचना अति नागर ।।
सेवक सुखद सुभग सब अंगा ।
जय सरीर छबि कोटि अनंगा ।।
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता ।
छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ।।
(**प्रस्थान करते-करते**)जय जय जय रघुकुल केतू ।
जय, जय, जय !···

नरनारी समूह : जय, जय, जय !

परशुराम का प्रस्थान। दूर तक उनकी आवाज सुनाई पड़ती है, जय रघुनन्दन, जय राम रमापति, जय जय जय ! क्रमश: मौन।

उल्लास का वातावरण। सब खड़े हैं केवल राम, लक्ष्मण और सीता पर प्रकाश-पुंज केन्द्रित।

तुलसी : देवन्ह दीनीं दुंदुभी प्रभु पर बरषहिं फूल।
वृन्द समेत हरषे पुर नर करि सब मिटी मोहमय सूल ।।

जनक : (**आगे बढ़कर राम के समक्ष, लेकिन कुछ नीचे खड़े होते हैं। हाथ जोड़ कर**)

हे दशरथनंदन राम, अब आप मेरे जामाता हुए और अवधपति दशरथ मेरे समधी। पर मेरे नयन-पटल खुल गये हैं। मैं देख रहा हूँ—

ब्यापकु ब्रह्म अलखु अबिनासी।
चिदानंदु निरगुन गुनरासी ।।
मन समेत जेहि जान न बानी।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ।।
महिमा निगमु नेति कहि कहई।
जो तिहुँ काल एक रस रहई ।।

नयन विषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीब कहँ भए ईस अनुकूल ।।

मैं कछु कहउँ एकबल मोरें।
तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें॥
बार बार माँगउ कर जोरे।
मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥

क्रमशः अंधकार। चतुर्थ दृश्य समाप्त। प्रकाश केवल तुलसीदास और उनकी मंडली पर केन्द्रित रह जाता है।

तुलसी : प्रभु विवाह जस भयउ उछाहूँ।
वृन्द सहित सकहिं न बरनि गिरा अहि नाहू॥
कबिकुल जीवनु पावन जानी।
राम सीय जसु मंगल खानी॥
तेहिते मैं कछु कहा बखानी।
करन पुनीत हेतु निज बानी॥
निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यौ।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारू कबि कौनें लह्यौ!

॥ समाप्त ॥
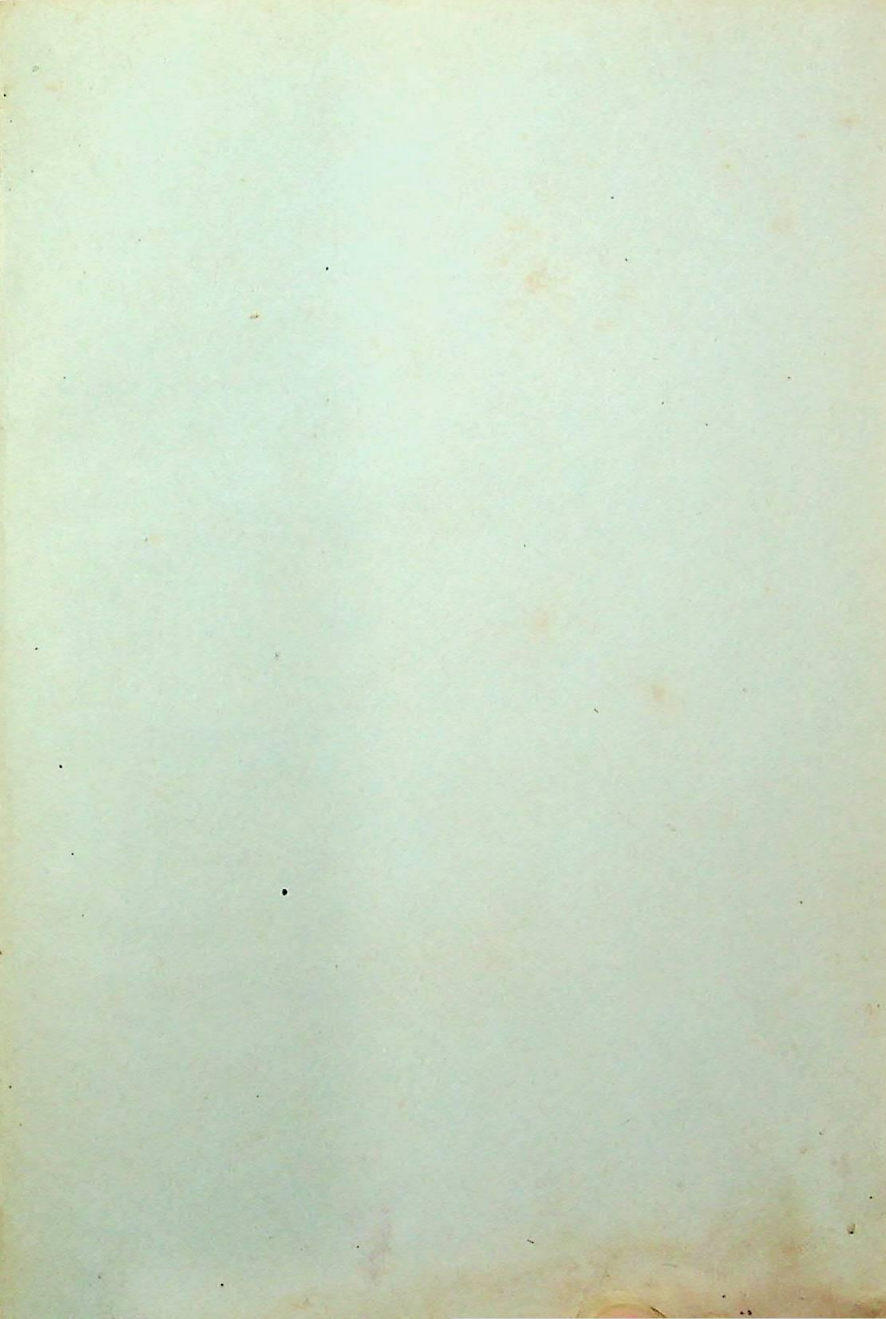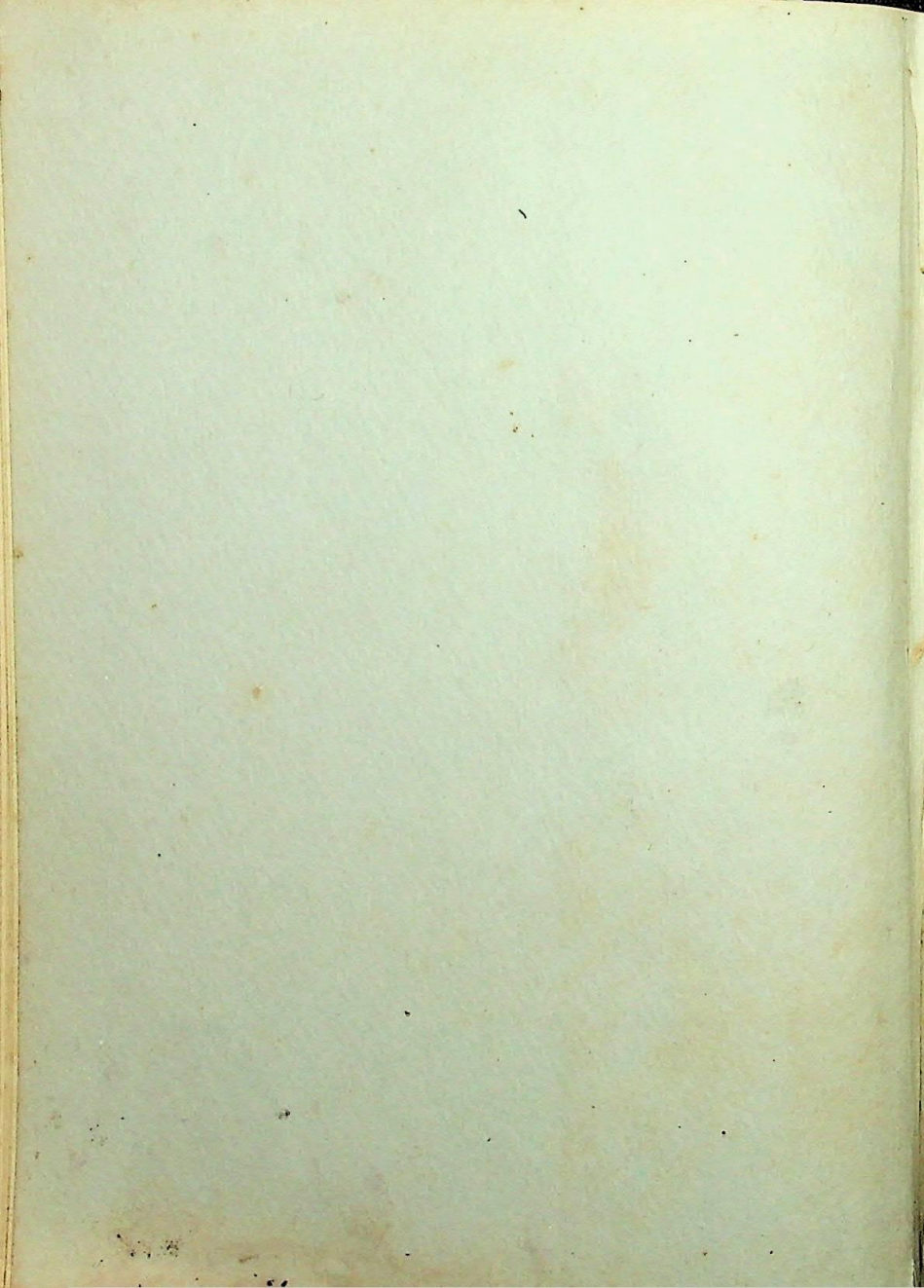
जगदीशचन्द्र माथुर

जन्म सन् १९१७ में। सन् १९३९ में अँग्रेजी साहित्य में एम० ए०। सन् १९४१ में इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा में भारत में चतुर्थ स्थान प्राप्त। अनेक बार विदेश-यात्राएँ कीं। छह वर्ष तक बिहार शासन में शिक्षा-सचिव। १९५५-६२ तक नयी दिल्ली में आकाशवाणी के महासंचालक। १९६२-६३ तक उत्तर बिहार (तिरहुत) के कमिश्नर। १९६३-६४ में एक वर्ष के लिए हार्वर्ड विश्वविद्यालय में विजिटिंग फैलो। स्वदेश लौटने पर कृषि-मन्त्रालय में अतिरिक्त सचिव। दिसम्बर १९७१ से ७३ तक गृह-मन्त्रालय में हिन्दी सलाहकार। सम्प्रति बैंकॉक में।

प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ : **एकांकी-संग्रह** : 'भोर का तारा', 'ओ मेरे सपने', 'मेरे श्रेष्ठ रंग-एकांकी'। **नाटक** : 'कोणार्क', 'शारदीया', 'पहला राजा'। **संस्मरण** : 'दस तस्वीरें', 'जिन्होंने जीना जाना'।